योगविद्या

वर्ष 3 अंक 11
दिसम्बर 2014
सदस्यता डाकखर्च – रु100

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत
विश्व योग सम्मेलन 2013 विशेषांक

हरि: ॐ

योग विद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी शक्तिमित्रानन्द सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है। देर से सदस्यता ग्रहण करने पर भी उस वर्ष के जनवरी से दिसम्बर तक के सभी अंक भेजे जाते हैं।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2014

पत्रिका की सदस्यता एक वर्ष के लिए पंजीकृत की जाती है। कृपया अपने आवेदन अथवा अन्य पत्राचार निम्नलिखित पते पर करें –

बिहार योग विद्यालय
गंगा दर्शन,
फोर्ट, मुंगेर, 811201
बिहार

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु स्वयं का पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।

कुल पृष्ठ संख्या : 64 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर फोटो : विश्व योग सम्मेलन 2013 के दौरान सत्यम् उद्यान में आयोजित महासुदर्शन यज्ञ

अन्दर के रंगीन फोटो : 1-8: श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

प्रार्थना

ईश्वर मिलन के लिए आत्मा की आतुरता ही प्रार्थना है। प्रभु से मिलने के लिए व्यक्ति के द्वारा किया गया हर प्रयास प्रार्थना है। ईश्वर से समीपता प्रार्थना है। मन को ईश्वर से जोड़ना प्रार्थना है। मन को प्रभु पर स्थिर करना प्रार्थना है। प्रभु के लिए अपने को पूर्ण रूप से समर्पित करना प्रार्थना है। एकान्त में मन और अहंकार को ईश्वर में मिला देना प्रार्थना है। भगवान की पूजा प्रार्थना है। उसकी महिमा गाना प्रार्थना है। ईश्वर को उसके आशीर्वादों के लिए धन्यवाद देना प्रार्थना है।

प्रार्थना वह गूढ़ अवस्था है जिसमें व्यक्ति की चेतना प्रभु में डूब जाती है। आत्मा को परमात्मा तक उठाना प्रार्थना है। यह उसके प्रति प्रेम और सम्मान की अभिव्यक्ति है। प्रार्थना एक प्रबल आध्यात्मिक शक्ति है। प्रार्थना योग की शुरुआत है, यह प्रारम्भिक आध्यात्मिक अभ्यास है। प्रार्थना धर्म का सार और उसकी आत्मा है।

– श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर – 811201, बिहार के लिए स्वामी ज्ञानभिक्षु सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद – 121007, हरियाणा
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी शक्तिमित्रानन्द सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 3 अंक 11 • दिसम्बर 2014
(प्रकाशन का 52 वाँ वर्ष)

विषय सूची

इस विशेषांक में स्वामी सत्यानन्द सरस्वती की पुस्तकों के चयनित अंशों और उनके प्रति समर्पित श्रद्धांजलियों का संग्रह हैं

4 आध्यात्मिकता का व्यावहारिक रूप
8 कीर्तन का रहस्य
11 श्रद्धांजलि
13 अष्टांग योग
18 श्रद्धांजलि
20 अजपा में चेतना का स्वरूप
23 मुझे क्षितिज के पार जाने दो
24 श्रद्धांजलि
36 पुरुषार्थ और प्रारब्ध
40 आश्रम जीवन का उद्देश्य
45 श्रद्धांजलि
47 साधना का सूत्र
52 श्रद्धांजलि
53 योग तथा बच्चों की समस्याएँ
56 भारत माता

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिक:। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥

आध्यात्मिकता का व्यावहारिक रूप

स्वामी सत्यानन्द जी के महागुजरात एवं सौराष्ट्र परिभ्रमण काल में 27 जनवरी 1956 को पाटन में दिए सार्वजनिक भाषण का सारांश, 'स्वर्णिम संग्रह-2' में पुनर्प्रकाशित

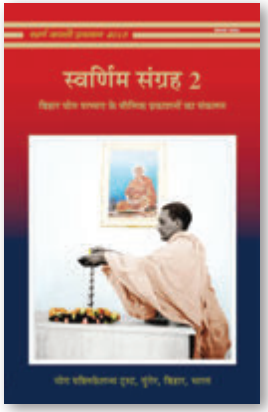

आप लोगों ने अनेक उपदेशात्मक व्याख्यान सुने होंगे, किन्तु आपने अपने दैनिक जीवन में उनका कितना उपयोग किया? आप यह तो जानते हैं कि यदि घर में पड़ी हुई किसी वस्तु का व्यवहार न करें, तो कुछ ही दिनों में वह अनुपयोगी होगी। ठीक यही दशा उपदेश की है। विद्या का उपार्जन व्यर्थ है यदि उसका समुचित उपयोग न किया जाए। वह विद्या सर्वथा निरर्थक है, जो दूसरों के काम न आए। इसीलिए जो उपदेश हमें मिले हैं यदि हम उनका अनुसरण नहीं करते तो वे निरर्थक ही हैं। वे अधिक काल तक हमारे पास टिक न सकेंगे। हमारे पास कहने को आध्यात्मिकता, सत्य, सदाचार—सभी कुछ हैं, किन्तु वे सब किस काम के? हमें अच्छे और पवित्र जीवनयापन के द्वारा उन्हें अभिव्यक्त करना चाहिए। पशुओं में भी मानवी संस्कार अवश्य दृष्टिगत होते हैं और मनुष्य में भी कुछ पाशविक संस्कार रह गये हैं। हम इस बात से इन्कार नहीं कर सकते कि पाशविक संस्कार मूली में लगी हुई मिट्टी की तरह हममें मौजूद हैं। उसे साफ करना हमारा कर्तव्य है।

हमें अपने जीवन में मानवी संस्कारों का विकास करना है तथा पाशविक संस्कारों को हटा देना है। ये जन्मजात पशु संस्कार क्या हैं? जानवरों के जीवन का यदि हम निरीक्षण करें, तो हमें पता चलेगा कि जानवर भोजन करता है, निद्रा लेता है और दूसरों से डरता है। आरामतलब है उसका जीवन। एक कुत्ते का उदाहरण लीजिए। जहाँ कहीं भी उसे भोजन मिले वहाँ खा लेता है। मनुष्य भी यदि ऐसा करे तो हम उसे महान् नहीं कह सकते। मनुष्य ही सबसे उच्च कोटि का प्राणी है। पशु जन्म में जब मनुष्यत्व का विकास होता है, तब वह मानव रूप धारण करता है। वैसे ही मनुष्य में जब देवत्व के गुण पनप उठते हैं, तब सन्त का जन्म होता है। सन्त आध्यात्मिकता की चरम सीमा पर जब पहुँच जाता है तब उसके मुक्ति के द्वार उन्मुक्त होते हैं।

लोग कहते हैं कि उपदेश से हमारा जीवन शुभ और पवित्र होता है, किन्तु इतना ही पर्याप्त नहीं। गृहस्थ जीवन एक परीक्षा है। जो इसमें सफलता प्राप्त करता है, वह मुक्त हो जाता है, अन्यथा कोल्हू के बैल की भाँति जीवन-कोल्हू में चक्कर लगाता रहता है। हमारे दैनिक जीवन में प्रतिपल कसौटियाँ आती हैं। हमारे कई मित्र हैं और

कई शत्रु भी। क्या हम उनके प्रति घृणा, द्वेष, ईर्ष्या से नहीं देखते? अरे, इतना ही नहीं, उनके विनाश की चेष्टा में भी हम प्रवृत्त होते हैं।

मनुष्य समाज और विश्व की इकाई है। जब हमारे समाज की यह इकाई घर में या समाज में लड़ती रहे, तब समाज में शान्ति कैसे रहेगी? मनुष्य को अपने उत्तरदायित्व का अनुभव कर मानसिक शान्ति धारण करनी चाहिए। मानसिक शान्ति तभी प्राप्त हो सकती है जब क्रोध को दमन करने में हम पूर्णतया सफल हो सकें। विचारों के त्याग से शान्ति उपलब्ध नहीं होती। शान्ति की प्राप्ति के लिए आध्यात्मिकता की आवश्यकता है। आध्यात्मिकता से मन के आलस्य, प्रमाद आदि का त्याग कर देना चाहिए; तब मनुष्य में नवीन चेतना उद्भूत होगी। समाज के प्रति उदासीन वृत्ति धारण करने से शान्ति संप्राप्त होगी, यह समझना भयंकर भूल है। समाज के कल्याण के लिये जो नया मार्ग स्थापित करता है, समाज की शान्ति के लिए जो नये-नये अनुसंधान करता है, वही शान्ति पाता है। जो अपने पास आने वाले को सुख और शान्ति प्रदान करता है, उसे खुश करने का प्रयत्न करता है, उसे ही सुख और शान्ति प्राप्त होती है।

आध्यात्मिकता की सच्ची परिभाषा क्या है? शान्ति। किसी को तनिक भी कष्ट न देना। आध्यात्मिक, राजनैतिक या सदाचार संबंधी विचारों या कार्यों से यदि हम दूसरों के दिल को दुखाते हैं, तो हमें कभी शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती। किसी कार्य के करने में यदि आपका उद्देश्य शुभ है तथा दूसरों को शान्ति प्रदान करना ही उसका हेतु है, तो मन की शान्ति अविच्छिन्न रहेगी। भले ही वह कार्य अत्यन्त निम्नकोटि का हो। ध्यान रहे कि बुरे या गलत कामों से हम किसी को भी प्रसन्न नहीं कर सकते। प्रत्येक मनुष्य की प्रसन्नता ही धर्म की सच्ची परिभाषा है। समाज उस व्यक्ति से खुश रहता है जो किसी को भी हानि नहीं पहुँचाता, किसी को भी कष्ट नहीं देता।

पूज्य स्वामी शिवानन्द जी हमेशा यही उपदेश देते हैं कि दूसरों को खुश रखो। यह बात वे जंगल में जाकर अथवा एकांत में बैठकर नहीं समझाते, वरन् समाज में मनुष्यों के बीच रहकर ही समझाते हैं। आपके सिद्धान्त से यदि किसी व्यक्ति की प्रसन्नता पर आघात पहुँचता है, तो आपको उस सिद्धान्त को अवश्य तिलांजलि दे देनी चाहिये। स्वामीजी मानते हैं कि साधु-संन्यासियों को फूलों की क्या आवश्यकता, पादपूजा का उनको क्या उपयोग, शरीर की यह पूजा क्यों? किन्तु इसके साथ ही

उन्होंने जीवन में जिस सत्य का साक्षात्कार किया है, उसे समझना हमारे लिये जरूरी है। वह है भावना। उन्होंने प्रेम का वास्तविक मूल्य पहचाना है। अगाध श्रद्धा से लोग जब भावना का दीप जलाकर, प्रेम पुजापा से उनके पादपद्म की पूजा करना चाहें तो क्या स्वामीजी उनकी कोमल भावना पर कुठाराघात करें? एकाध व्यक्ति यदि ऐसा करे तो हम कह सकते हैं कि शायद वह व्यक्ति मूर्ख होगा, किन्तु सभी तो मूर्ख नहीं हो सकते? ऐसे अवसरों पर आध्यात्मिक सिद्धान्तों को अलग रखना होगा। ऐसा करने से किसी की भी हानि नहीं होती, वरन् इससे लाभ ही होता है। वह लाभ है औरों को खुशी और आनन्द। यही आध्यात्मिकता का व्यावहारिक रूप है।

एक दिन जब एक भिखारी हमारे पास आया और कम्बल मांगने लगा, तब किसी ने कहा कि पिछले साल ही तो कम्बल दिया था, आज फिर क्यों कम्बल मागने आ गए? श्री स्वामीजी कहने लगे, 'भाई, तुम्हें कम्बल नहीं देना है तो न सही, किन्तु उस भिखारी का अनादर व अपमान न करो। उसे शान्ति प्रदान करना तुम्हारा कर्तव्य है। उसके साथ पूर्ण शान्ति से व्यवहार करो।' शान्ति और आनन्द को अपने जीवन में व्यवहृत करने के असंख्य मौके प्रतिदिन आते रहते हैं, किन्तु कितनी बार हम उन कसौटियों पर खरे उतरते हैं? यह संसार एक स्कूल है, जहाँ हम स्वानुभव तथा दूसरों की गवेषणा से बहुत कुछ सीख सकते हैं। यहाँ असंख्य साधुओं ने मनुष्यों के मध्य रहकर ही अनेक अनुभूतियाँ प्राप्त की हैं। जनसाधारण की यह मान्यता है कि साधुओं को किसी चीज का झंझट नहीं। वे सब तो झंझट में उलझे हुए हैं और इसीलिए वे ही जानते हैं कि संसार सत्य है या झूठ, साधुओं को और काम ही क्या होता है? ऐसे स्थान पर आश्रम की स्थापना कर श्री स्वामीजी ने वास्तविक जीवन द्वारा संसार के इन प्रश्नों का उत्तर दिया है। आश्रम की स्थापना ऐसे स्थल पर हुई है, जहाँ सभी प्रकार के लोग आते हैं, सभी सांसारिक झंझटों को झेलना पड़ता है। श्री स्वामीजी के उच्च जीवन और आदर्श व्यवहार से आकृष्ट होकर भारत के कोने-कोने से लोग उनके दर्शनार्थ वहाँ पधारते हैं। कहाँ-कहाँ से लोग आकर वहाँ निवास करते हैं। हम सभी आज संन्यासी वेश में आपके सामने हैं। जब हम आश्रम आए तब हमारी न किसी से जान थी न पहचान। हमने एक-दूसरे को देखा भी नहीं था। मैं जहाँ से आया हूँ कितनी दूरी पर है वह स्थान, किन्तु आज हमारा सम्बन्ध प्रेमभावना से बंधा हुआ है। उन्होंने अपने आत्मज के रूप में हमें अपना लिया है। वे हमसे तथा सबसे ऐसा प्रेम करते हैं जैसा कि पिता पुत्र के साथ क्वचित् ही करता होगा। गृहस्थ लोग तो जब स्वामीजी के दर्शन के लिए आते हैं, तो कुछ-न-कुछ भेंट उन्हें चढ़ाते हैं, किन्तु जब हम आए थे तो अपने साथ कुछ भी लेकर नहीं आए थे।

स्वामीजी ने हमें यह सिखाया कि संन्यासी होते हुए भी कार्यरत रहो। स्वयं स्वामीजी ब्रह्ममुहूर्त्त में चार बजे से लेकर रात्रि के ग्यारह बजे तक काम करते हैं। आश्रमवासियों को अत्यधिक कार्यभार के कारण कभी-कभी जप, ध्यान, कीर्तन इत्यादि के लिए

खास समय निकाल कर साधना करने के लिए भी अवसर नहीं मिलता। स्वामीजी का कहना है कि मन और शरीर को तनिक भी विश्राम न दो। मन को स्वच्छन्द विचरण मत करने दो। उन्हें सदा कार्यव्यस्त रखो जिससे कि दोनों थक जाएँ, किन्तु इसके साथ ही आध्यात्मिकता की भावना वैसी-की-वैसी अविच्छिन्न बनी रहे। इसमें जरा भी अन्तर न आवे। गृहस्थों की चुनौती का कितना सुन्दर है स्वामीजी का यह उत्तर!

संन्यासी सुबह से शाम पर्यन्त कार्य करते रहने पर भी अपने आध्यात्मिक प्रवाह से क्षण भर भी विमुक्त नहीं होता। सांसारिक पदार्थों की न तो वह चाह करता है और न ही उनके पीछे भागता है। वह तो प्रलोभनों से मुख मोड़ कर आगे ही चलता जाता है। गृहस्थों के उन कार्यों का क्या उपयोग जिनमें आध्यात्मिकता का समावेश न हो। श्री स्वामीजी ने व्यावहारिक जगत् में रहकर विश्व को एक अनूठा अनुसन्धान दिया है। स्वामीजी के जीवन पथ का अनुसरण करने वालों को धर्म के साथ कभी टक्कर नहीं लेनी पड़ती। धर्म और आध्यात्मिकता की पटरियों पर जब हमारे जीवन की रेलगाड़ी चलती है, तभी वह अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच सकती है। जीवन ने यदि इनमें से किसी को भी समुचित रूप से स्वीकार नहीं किया, तो जीवन की रेलगाड़ी को टक्कर खानी पड़ती है और फलत: मिलती है अशान्ति। इसीलिए प्रवृत्ति और निवृत्ति के समन्वय को ही योग कहते हैं। परमार्थ और व्यवहार के संयोग का नाम है धर्म।

इस प्रकार के जीवन में शत्रु और मित्र का भेद नहीं होता और न ऊँच और नीच का। समाज से किसी भी व्यक्ति का हमें बहिष्कार नहीं करना है। जो भावना हम एक के लिए रखते हैं, वही हमें दूसरों के लिए भी रखनी चाहिए। जीवन और धर्म, परमार्थ और व्यवहार यदि एकरूप होकर नहीं चलते, तो हमें ऐसे जीवन और ऐसे व्यवहार को परिष्कृत करना होगा, अन्यथा वे आपस में टकराकर अशान्ति का सृजन करेंगे।

कीर्तन का रहस्य

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती प्रणीत 'योग प्रदीप-2' से उद्धृत

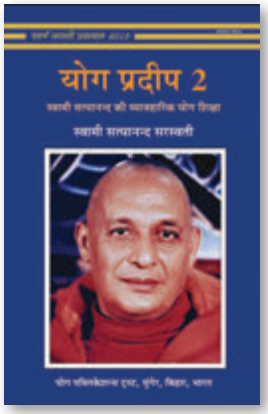

कीर्तन योग का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। जिस प्रकार शक्कर के बिना चाय और 'लवण बिना बहु व्यंजन' अपूर्ण है, उसी प्रकार कीर्तन रहित योग भी अपूर्ण है। कीर्तन का सम्बन्ध न तो धर्म से है, और न ही किसी एक शब्द या पंक्ति को बार-बार दुहराने से। कीर्तन नादयोग का एक अंग है जिसमें आप ध्वनि तरंगें उत्पन्न कर चैतन्य हो उनका अनुसरण करते हैं। कीर्तन द्वारा आप स्वयं को शरीर तथा बाह्य वातावरण से दूर ले जा सकते हैं।

जब आप कीर्तन करते हैं तो मानो भावनाओं के जेट वायुयान से यात्रा करते हैं। इससे आपका मन से संघर्ष नहीं होता। इस रहस्य को भारत के लोग अच्छी तरह जानते हैं। यदि मैं भारत में नादयोग पर कोई सेमिनार आयोजित करूँ जिसमें कीर्तन किया जाए, तो हजारों लोग उसमें भाग लेंगे क्योंकि वे कीर्तन के रहस्य को जानते हैं। राजयोग में आपको मन के साथ संघर्ष करना पड़ता है, किन्तु कीर्तन में आप मन की अनदेखी कर आगे बढ़ जाते हैं।

लगभग पाँच सौ साल पहले भारत में चैतन्य महाप्रभु नामक एक महान् संत हुए थे। चूँकि वे पश्चिमी लोगों की तरह गोरे थे, इसलिये उन्हें गौरांग भी कहा जाता था। वे अपने समय के महान् प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति थे, परन्तु वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि आध्यात्मिक जीवन के मार्ग में बुद्धि एक रोड़ा है। उन्होंने अपने भीतर भक्ति-भावना विकसित की और इसके लिए कीर्तन का रास्ता अपनाया। कीर्तन गाते-गाते चैतन्य महाप्रभु भावाविष्ट हो जाते और घण्टों तक 'हरे कृष्णा हरे कृष्णा, कृष्णा कृष्णा हरे हरे' दुहराते रहते। जहाँ से भी वे निकलते, गाँववालों की नाचती-गाती भीड़ उनके पीछे चल देती थी। पूरे-का-पूरा दल एक गाँव से दूसरे गाँव पहुँचता था।

चैतन्य महाप्रभु के बाद योग के विभिन्न अंगों के साथ कीर्तन जुड़ता गया। योग के कठिन अभ्यासों और साधना के साथ मधुर कीर्तन रूपी नादयोग का अभ्यास सोने में सुहागे का कार्य करता है। कीर्तन की कुछ धुनें सीखकर समूह में उनका अभ्यास कीजिये, अकेले नहीं। कीर्तन को प्रभावी बनाने के लिए हारमोनियम, मृदंग और मंजीरे का उपयोग करना चाहिए। इन वाद्यों के साथ अपने हृदयपक्ष और श्रद्धा का

भी संपुट कीजिये। कीर्तन के द्वारा आप स्वयं को अनेक कुण्ठाओं तथा ऊर्जा के अवरोधों से मुक्त कर सकते हैं।

जब आप कीर्तन में सम्मिलित होते हैं तो यह पूरी तरह भूल जाइये कि आप कोई इंजीनियर, डॉक्टर, वैज्ञानिक, अध्यापक, उच्च अधिकारी अथवा भद्र महिला हैं। ये ऊपर से आरोपित विशेषताएँ या सीमाएँ हैं, इन्हें आपकी व्याख्या नहीं कहा जा सकता। जब आप कहते हैं कि आप एक प्रतिभा सम्पन्न वकील, डॉक्टर अथवा बड़े घराने की भद्र महिला हैं, तो इसका यह तात्पर्य हुआ कि आप अपने ऊपर कुछ सीमाएँ आरोपित कर रहे हैं। ये सीमाएँ आपको कीर्तन में पूरी तरह खुलने नहीं देंगीं। जब आप कीर्तन में जायें तो अपने अहम्, पद की गरिमा, लोगों से दूरी आदि सब कुछ घर पर छोड़ दें। अपने को कुछ न मानते हुए कीर्तन के प्रवाह में बहने दें। तब और केवल तब ही आप अपनी कुण्ठाओं का अतिक्रमण कर पायेंगे।

याद रखिये, कीर्तन कोई बौद्धिक योग नहीं है। कीर्तन से उत्पन्न हर ध्वनि तरंग आपकी चेतना की गहराई में उतरती है। बुद्धिजीवी कीर्तन को यदि बुद्धि के माध्यम से समझने की कोशिश करें तो शायद उनके पल्ले कुछ नहीं पड़ेगा, क्योंकि कीर्तन का प्रयोजन व्यक्ति के भावनात्मक पक्ष को छूना है। हालाँकि भावनाओं को समुचित रूप से समझा नहीं जा सकता, फिर भी वे व्यक्ति के हाथ में अत्यन्त प्रभावी उपकरण मानी जाती हैं।

बुद्धि के द्वारा आप कभी भी चेतना की गहराई में नहीं उतर सकते और न ही उसे पकड़ सकते हैं। बुद्धि के द्वारा ब्रह्म, जगत्, सत्य आदि की सैद्धान्तिक जानकारी अवश्य एकत्र कर सकते हैं, परन्तु इनका अनुभव कदापि नहीं कर सकते।

ज्ञान और अनुभव में बड़ा अन्तर है। मैं आपको एक मजेदार घटना बताता हूँ। एक बार मैं अपने शिष्य के साथ वायुयान से ऑस्ट्रेलिया जा रहा था। मेरी मुलाकात एक विद्वान् अंग्रेज प्रोफेसर से हुई। उन्होंने भारतीय मिठाइयों पर एक शोध-प्रबन्ध तैयार कर अपने विश्वविद्यालय में प्रस्तुत किया था। उनका ग्रन्थ बड़े दिलचस्प तथ्यों से भरा था। काफी देर तक भारतीय मिठाइयों पर उनसे मेरी मनोरंजक वार्ता होती रही।

थोड़ी देर बाद हम लोग रात्रि का भोजन करने की तैयारी में लग गये। हवाई कम्पनी ने मुझे भोजन का डिब्बा दिया, जिसमें भारत की प्रसिद्ध मिठाई, रसगुल्ला थी। जब मैंने भोजन प्रारम्भ किया तो अपने शिष्य को कुछ रसगुल्ले देकर प्रोफेसर महोदय के पास भेजा। उन्होंने रसगुल्ले की मिठास और स्वाद का अनुभव किया, फिर मेरे शिष्य से पूछा, 'यह कौन-सी मिठाई है?' मेरा शिष्य थोड़ा स्पष्ट भाषी है। उसने कहा,'अपने शोध-प्रबन्ध में देखिये!'

मैं ज्ञान और अनुभव में अन्तर स्पष्ट कर रहा हूँ। यह निर्विवाद है कि उस विदेशी प्रोफेसर को भारतीय मिठाइयों की गहरी सैद्धान्तिक जानकारी थी, परन्तु उसका वास्तविक अनुभव शून्य था। याद रखिये, बुद्धि ज्ञान का माध्यम है, परन्तु

अनुभव का माध्यम भावना है। यदि आप ईश्वर और शान्ति का अनुभव करना चाहते हैं तो आपको अपने व्यक्तित्व के भावनात्मक आयाम का विकास करना होगा। यदि आपका भावनात्मक पक्ष कमजोर होगा तो आप मन्दिर या गिरजाघर में भले ही महीनों-सालों तक ईश्वर पर व्याख्यान सुनें, वह आपसे दूर ही बना रहेगा। किन्तु यदि आप भावाविष्ट हो तो ईश्वर के नाम का उल्लेख होते ही आप में भाव आ जायेगा और उसे अपने भीतर देखेंगे। भावना वह नेत्र है जिससे आप उच्च प्रेम और चेतना का अनुभव कर सकते हैं।

अपने भावनात्मक पक्ष को विकसित करना एक राजयोगी अथवा हठयोगी के लिए भी अत्यंत आवश्यक है। इसकी अनेक युक्तियाँ हैं, जिनमें कीर्तन सबसे अधिक सुरक्षित, सस्ती और शीघ्र फलदायी है। पन्द्रह-बीस लोगों के समूह में बैठिये। कीर्तन की धुन चुनिए और गाने वाले एक व्यक्ति का अनुसरण कीजिये। जब वह एक पंक्ति गा चुके, तो बाकी सब लोग उसे दुहराएँ। कीर्तन में अन्य वाद्यों के साथ मृदंग आवश्यक है, क्योंकि मृदंग की आवाज का तत्काल प्रभाव मन की तरंगों और रक्त-संचार पर पड़ता है। वास्तव में मृदंग की लय और ध्वनि, शरीर और मन की आंतरिक मालिश करती है।

करीब आधे घण्टे तक कीर्तन करने के बाद शान्तिपूर्वक ध्यान कीजिये। यदि सचमुच आपने कीर्तन में स्वयं को पूरी तरह डुबाया है तो आपका ध्यान निर्विघ्न होगा। ध्यान के मार्ग में आपको किसी भी प्रकार की बाधा का अनुभव नहीं होगा। आपका मार्ग प्रशस्त होगा।

आत्मदीपो भव

श्रीमती रत्ना ब्यौहारे, रायपुर

सन् 1959 की बात है। स्वामी सत्यानन्द जी राजनाँदगाँव में थे, मुम्बई से विश्वप्रेम और उनके मामाजी भी आये थे। स्वामीजी ने किसी गाँव में साधना शिविर करने की इच्छा व्यक्त की। जीजाजी (स्वामी सत्यव्रतानन्द जी) के मित्र भगवती बाबू के गाँव पठानढोड़गी जाना तय हुआ। बीहड़ जंगल से होकर रास्ता जाता था, बीच में नाला पड़ता जहाँ अंधेरा घिरते ही शेर, चीते जैसे जंगली जानवर पानी पीने आते थे। तीन बैलगाड़ियाँ लाई गईं, बैलगाड़ी के चारो तरफ कंडील टंगे थे। सबसे आगे गाड़ी में भगवती बाबू, स्वामीजी, जीजाजी और दो नौकर थे। बीच में दीदी (स्वामी धर्मशक्ति), विश्वप्रेम, मैं खुद और आरती व काम करनेवाली बाई थी। हमारी गाड़ी पर परदा तान दिया गया था। तीसरी बैलगाड़ी में मामाजी, गाँव के पटेल और चौकीदार वगैरह थे, साथ में कपड़े और अन्य जरूरी सामान था।

अंधेरा घिर रहा था, शेरों के दहाड़ने की आवाज आ रही थी, हम बहुत डर गये थे। जीजाजी, भगवती बाबू, स्वामीजी, पटेल और कुछ मजदूर हाथ में मशाल लिये थे, कुछ टीन पीट रहे थे, बाकी सब जोर-जोर से बातें कर रहे थे। थोड़ी देर में दहाड़ की आवाज शान्त हो गई और काफिला आगे चला। नाले पर बने कच्चे पुल को सावधानी से पार किया। गाँव के लैंप पोस्ट में जलती हुई चिमनी को देखकर हम खुशी से उछल पड़े।

सुबह होते ही कर्मयोग प्रारम्भ हुआ। साफ-सफाई, आसन-प्राणायाम, जप-ध्यान से दिनचर्या आरम्भ हुई। संध्या भजन-कीर्तन होता, जिसमें गाँववाले भी जुट जाते। कभी-कभी स्वामीजी चूल्हे के पास बैठकर, बड़े से पतीले में खिचड़ी पकाते। पानी में चावल, दाल, नमक, हल्दी, हर प्रकार की सब्जी और अंत में खूब सारा गाय का घी उड़ेल देते। उनकी ब्रह्मखिचड़ी का आनन्द हमारे साथ गाँववाले भी लेते।

पन्द्रह दिन बाद विश्वप्रेम और मामाजी को मुम्बई लौटना था। जाने से पहले अचानक विश्वप्रेम को तेज बुखार आ गया। सब चिंतित थे। मुम्बई पहुँचना भी जरूरी था। दो-तीन दिन बाद अचानक विश्वप्रेम स्वस्थ हो गई और मामाजी के साथ मुम्बई रवाना हो गई। दोपहर को स्वामीजी ने मुझे कम्बल ओढ़ाने को कहा। उनका शरीर बुखार में तप रहा था। दीदी घबरा गई, राई-नून लेकर नजर उतारने लगी। स्वामीजी हँसने लगे, 'भई बुखार को अपनी मियाद पूरी करने दो।' मैं कुछ

समझी नहीं, बाद में दीदी ने बताया कि स्वामीजी ने विश्वप्रेम का ज्वर अपने ऊपर ले लिया था।

स्वामीजी कहा करते थे 'आत्मदीपो भव'। दीपक सबको आलोकित कर स्वयं विलीन हो जाता है। अगरबत्ती पवित्र ऊर्जा और सुगन्ध बिखेरकर भस्मीभूत हो जाती है। स्वामीजी आपकी पावन स्मृति और प्रेरणा हमारे पथ को आलोकित करती रहे!

गुरु का मार्गदर्शन हमेशा अचूक होता है। इसे प्राप्त करने के लिए शिष्य को हमेशा तत्पर रहना चाहिए; अरुचि या अश्रद्धा के कारण कभी गुरु का त्याग नहीं करना चाहिए। कई बार जब शिष्य अपनी इच्छाओं की पूर्ति अपेक्षित समय में होती हुई नहीं देखता या रोगग्रस्त रहता है अथवा गुरु की मदद को, गुरु की शिक्षाओं के भाव को समझने में असमर्थ रहता है तब वह निराश होकर गुरु को छोड़ देता है। ऐसी परिस्थिति में उसे गुरु का मार्गदर्शन प्राप्त नहीं होता। गुरु अपने शिष्यों के प्रति प्रेम तथा सतर्कता रखते हुए उसे अनेक मार्गों से ले जाते हैं। उसकी चेतना के विभिन्न स्तरों का निरीक्षण करते हैं। उसे सूचना देते हैं और सावधान करते हुए मार्गदर्शन देते हैं। उनके दूर रहने से कोई अन्तर नहीं पड़ता। जिस प्रकार एक माता दुनिया में कहीं भी रहने पर अपने बच्चे का ख्याल रखती है, उसी प्रकार शिष्य को गुरु का प्रेम, संरक्षण और मार्गदर्शन, अहर्निश तथा प्रतिक्षण मिलता रहता है। गुरु-शिष्य प्रेम के विषय को शब्दों में कहना अत्यन्त कठिन है। लेकिन इसे अनुभव करना सरल है।

– स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

अष्टांग योग

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती प्रणीत 'समाधि विद्या' से उद्धृत (स्वर्णिम संग्रह-3 में पुनर्प्रकाशित)

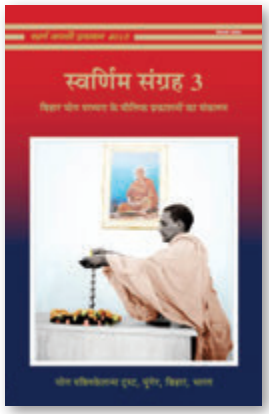

जो साधक अपने चित्त को थामने में असमर्थ हैं, ऐसे व्यक्तियों के लिए महर्षि पतंजलि ने योग का अष्टांग अनुष्ठान बतलाया है, जिससे चित्त की अशुद्धि के हेतुभूत क्लेशों का नाश हो तथा विवेकख्याति-पर्यन्त प्रकाश हो। योग के ये आठ अंग यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि हैं। इनमें प्रथम पाँच क्रियात्मक हैं, शेष तीन ध्यानात्मक।

चित्त की पाँच अवस्थाएँ हैं—क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध। क्षिप्त अवस्था में चित्त-वृत्तियाँ विषयाकार होकर चंचल और उन्मत्त रहती हैं। मूढ़ अवस्था में निद्रा, आलस्य और प्रमाद के प्रभाव से मन्द रहती हैं। विक्षिप्त अवस्था में चित्त-वृत्तियाँ कभी विषयाकार रहती हैं और कभी स्थिर। एकाग्र अवस्था में चित्त-वृत्तियाँ सब तरफ से सिमटकर, चंचलता के अभाव में केवल एक ओर लग जाती हैं। निरुद्ध अवस्था में चित्त की वृत्तियाँ विषयों के अभाव में शान्त हो जाती हैं, और बिना आधार के रहती हैं।

यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार से क्षिप्त, मूढ़ और विक्षिप्त वृत्तियों को एकाग्रता में समर्थ बनाया जाता है। धारणा, ध्यान और समाधि से एकाग्रता व निरोध की सिद्धि की जाती है।

यम और नियम

यम पाँच प्रकार के होते हैं—सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह। मन-वचन-कर्म से सत्य का पालन 'सत्य', किसी को पीड़ा नहीं पहुँचाना 'अहिंसा', चोरी न करना 'अस्तेय', वीर्यरक्षा 'ब्रह्मचर्य', और निर्लोभिता व संग्रह-वृत्ति का अभाव 'अपरिग्रह' है।

पाँच नियम हैं—शौच, सन्तोष, तपस्या, स्वाध्याय और ईश्वर-प्रणिधान। बाहरी और भीतरी पवित्रता को 'शौच' तथा पुरुषार्थ द्वारा प्राप्त वस्तुओं में आनन्द 'सन्तोष' है। शरीर, प्राण, इन्द्रिय समूह तथा अन्त:करण को वशीकार में ले आने के उपाय या उपायों को 'तपस्या' कहते हैं, जिससे साधक विक्षेपरहित होकर योग के मार्ग में आरूढ़ हो सके। पुरुष ज्ञान परक शास्त्रों का अध्ययन तथा अपने इष्ट-मंत्र का

विधिवत् जप ही 'स्वाध्याय' है। इससे अन्तस् शुद्ध होता है। ईश्वर के स्वरूप के अनुसंधान में मन को पूर्णत: लगा देना ही ईश्वर-प्रणिधान है।

असत्य, हिंसा, व्यभिचार, चोरी, लोभ-संग्रह, अशुचिता, असन्तोष, विलासिता, गप-शप, और नास्तिकता—ये विरोधी प्रयोग 'वितर्क' के नाम से जाने जाते हैं। ये दोष, लोभ, क्रोध और मोह से किए जाने पर कभी मृदु-रूप में, कभी मध्यम-रूप में और कभी भयंकर-रूप में साधक में प्रवृत्त होते एवं दु:ख और अज्ञान के रूप में अनन्त फल देते हैं।

जब भी उपरोक्त वितर्क यम और नियम के पालन में बाधा पहुँचावें, तब प्रतिपक्षी विचारों की भावना करनी चाहिए और यह विवेक जाग्रत करना चाहिए कि इन वितर्कों का परिणाम अनन्त दु:ख और अज्ञान होता है।

अहिंसा-व्रत का भली-भाँति पालन कर लेने से उस योगी की सन्निधि में सभी प्राणी पारस्परिक वैर को भूल जाते हैं। सत्य-व्रत का भली-भाँति पालन कर लेने से वह योगी अमोघ वाणी का उपार्जन कर लेता है, जिसके फलस्वरूप उसमें वह शक्ति आ जाती है कि वह क्रियाओं के फल का आश्रय बन जाता है। अस्तेय-व्रत का भली-भाँति पालन कर लेने से वह योगी सर्वप्रकार की सम्पत्ति का उपस्थान बन जाता है, अर्थात् सम्पत्ति उसके पास अपने-आप चली आती है। ब्रह्मचर्य-व्रत का भली-भाँति पालन कर लेने से योगी में शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक सामर्थ्य का प्रादुर्भाव होता है। अपरिग्रह-व्रत का भली-भाँति पालन कर लेने से योगी को अपने पूर्वापर-जन्मों का ज्ञान हो जाता है।

बाह्य-पवित्रता के अभ्यास से अपने शरीर से विरक्ति और दूसरों के शरीर से संसर्ग न रखने की भावना जागती है। आभ्यन्तरिक-पवित्रता के अभ्यास से चित्त-शुद्धि, मन की प्रसन्नता, एकाग्रता, इन्द्रियों पर वशीकार और आत्म-दर्शन की क्षमता उत्पन्न होते हैं। सन्तोष के अभ्यास में दृढ़ता आ जाने से योगी को ऐसे सुख की प्राप्ति होती है, जिसकी बराबरी कोई भी सांसारिक सुख नहीं कर सकता। तपस्या के अभ्यास से योगी के शरीर और इन्द्रियों के मल का नाश हो जाता है और उसे काय-सम्पद् और इन्द्रिय-सम्पद् रूप सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। स्वाध्याय के पूर्वोक्त नियमों का भली-भाँति पालन कर लेने से योगी को अपने इष्ट देवता के दर्शन होते हैं। ईश्वर-प्रणिधान के अभ्यास से समाधि की सिद्धि होती है।

उपरोक्त दसों व्रतों का भली-भाँति पालन करने वाला योगी न चाहते हुए भी सांसारिक सुखों पर अपना वश कर लेता है, सिद्धि और समाधि की भी प्राप्ति करता है।

आसन और प्राणायाम

योग के अभ्यासी के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह शरीर और प्राणों को स्थिर बना ले। इसके लिए आसन और प्राणायाम का विधान है।

आसन व्यायाम के रूप में भी होते हैं और समाधि के अभ्यास के लिए बैठक के रूप में भी। समाधि की सिद्धि के लिए योगी को आसन पर निश्चल होकर और सुख के साथ ऐसे बैठना चाहिए, जिसमें मेरूदण्ड सीधा रहे और अंगों में पीड़ा न हो। सिद्धासन, स्वस्तिकासन, पद्मासन और वीरासन–इन चारों में से किसी एक आसन को सुविधानुसार चुन लिया जाय।

आसन में स्थिरता और शिथिलता को ले आने के लिए शरीर-सम्बन्धी सब प्रकार की चेष्टाओं को त्याग कर अनन्त परमेश्वर में चित्त को लगा देना चाहिए। आसन के सिद्ध हो जाने पर शरीर गर्मी और सर्दी जैसे अनुकूल और प्रतिकूल प्रभावों से अचंचल हो जाता है, शरीर में स्थिरता आ जाती है और समाधि की बाधाभूत विक्षेप वृत्तियाँ शान्त हो जाती हैं।

जिस तरह शरीर की स्थिरता आसनों से सिद्ध होती है, वैसे ही प्राणों की स्थिरता प्राणायाम से। आसन सिद्ध होने के बाद प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए। श्वास और प्रश्वास के तार को तोड़कर अलग कर देने का नाम प्राणायाम है। श्वास और प्रश्वास के तारों को तोड़ने के लिए उपाय है श्वास को अन्दर और बाहर रोकना।

यह क्रिया इस प्रकार है। सांस अन्दर लीजिए, रोकिए, छोड़ दीजिए, बाहर रोकिए। इसी तरह करते जाइए। अधिकारी भेद से पूरक, अन्तर्कुम्भक, रेचक और बाह्य कुम्भक की मात्राएँ अलग-अलग हैं, जिसकी दीक्षा गुरु से लेनी चाहिए।

प्राणायाम में प्राणवायु को बाहर और अन्दर स्तम्भित कर तीन बातों का पहले ख्याल रखना चाहिए। एक तो यह देखा जाय कि प्राणवायु अन्तर्कुम्भक में किस स्थान तक अन्दर में पहुँच रही है और बाह्य-कुम्भक में कितने अंगुल तक बाहर जा रही है। दूसरा यह कि कितनी मात्रा तक अन्तर्कुम्भक और बहिर्कुम्भक होता है। तीसरा यह कि कितनी संख्या तक उनका अभ्यास हो रहा है, अर्थात् प्राणायाम की कितनी आवृत्तियाँ हो पा रही हैं।

क्रिया इस प्रकार है। मात्रानुसार पूरक कीजिए और किसी भी अन्त: प्रदेश में कुम्भक कर निश्चित समय को नापिए। तदनन्तर मात्रानुसार रेचक करते हुए श्वास का अंगुल-प्रमाण देखिए और अन्त में बाह्य कुम्भक कर किसी भी अन्त:प्रदेश में मात्रानुसार समय नापिए। इसी की आवृत्ति कीजिए।

उपरोक्त प्राणायाम के अतिरिक्त एक और प्राणायाम की क्रिया है। इसमें बाहर व भीतर के विषयों का त्याग कर देने से पूरक और रेचक को समान बना दिया जाता है। इसका अभ्यास दीर्घकाल तक होने से चित्त अपने आप थम जाता है।

प्राणायाम का अभ्यास करते-करते अविद्याजनित आवरण, जिससे आत्म-ज्ञान-रूपी प्रकाश छिपा है, नष्ट हो जाता है और मन में किसी भी विषय की स्थिरतापूर्वक धारणा करने की क्षमता आ जाती है।

प्राणायाम के अभ्यास से, विशेष रूप से चतुर्थ प्राणायाम के द्वारा, चित्त की गति थम जाती है और इष्ट-विषय की, जितनी देर चाहो, भावना की जा सकती है।

प्रत्याहार

इन्द्रियों का अपने विषयों से उपरत होकर चित्त-वृत्ति का अनुगमन करना अष्टांग-योग की पाँचवी साधना है, जिसे प्रत्याहार कहते हैं।

इन्द्रियाँ अपने पाँच विषयों में रमण करती हैं और शब्दादि ज्ञान प्राप्त करती हैं। यह इन्द्रियज्ञान बहिर्मुखी वृत्तियों का परिणाम है। जब चित्त अपने ध्येय-स्वरूप के अभिमुख होता है, उस समय शब्दादि-विषयों का क्रमिक अथवा सर्वथा लोप होने लगता है और वे भी अन्तर्मुख होकर चित्त में मिल-सी जाती हैं।

वास्तव में इन्द्रियाँ जड़ हैं, उनके अन्तर्मुख होने का सवाल ही नहीं उठता। यह तो चित्त ही अपने को इन्द्रियों के माध्यम से बहिर्मुख कर शब्दादि का ग्रहण करता है, और ध्येयाभिमुख होकर अपनी ही शब्दादि का अनुभव करने वाली चेतना को अन्तर्मुख करता है। अत: बहिर्मुख-चित्त का, जिसे कर्मभाव से इन्द्रिय-समूह कहते हैं, अन्तर्मुख होना प्रत्याहार है।

अन्तर्मुख-वृत्ति के प्रवृत्त हो जाने से बहिर्मुखी वृत्ति याने इन्द्रिय-समूह की संवेदनशीलता व उनकी विषयाकार-वृत्ति पर योगी का पूर्ण नियंत्रण स्थापित हो जाता है, अर्थात् इन्द्रियों के व्यापार थम जाते हैं। यह अवस्था प्रत्याहार की है।

यम-नियमादि पांच क्रियात्मक साधन मन्द अधिकारियों के लिए उनको उत्तम बनाने के हेतु हैं। शेष तीन साधन, धारणा, ध्यान और समाधि उत्तम अधिकारियों के लिए हैं। पाँच क्रियात्मक साधनों का उल्लेख कर दिया गया। अब शेष तीनों पर चर्चा होगी।

धारणा, ध्यान और समाधि

चित्त की वृत्ति को किसी भी स्थान पर थामना, ठहराना और बाँधना 'धारणा' है; अर्थात् मन से एक तत्त्व की धारणा करना। इसे किसी बाह्य तत्त्व पर त्राटक द्वारा साधा जाता है, अथवा अपने अन्तरंग तत्त्वों पर भी। कोई श्वास पर चित्त को थामते हैं तो कोई बाह्य-इन्द्रियों के विषयों पर। कोई इष्टदेव पर त्राटक तथा धारणा करते हैं तो कोई शून्याकार-वृत्ति से मन को थामते हैं और कोई संगीत की लय और ताल पर

मन को लगाते हैं। इस प्रकार चित्त को किसी भूमि पर ठहराना और किसी भी उपाय से ठहराना 'धारणा' कहलाती है।

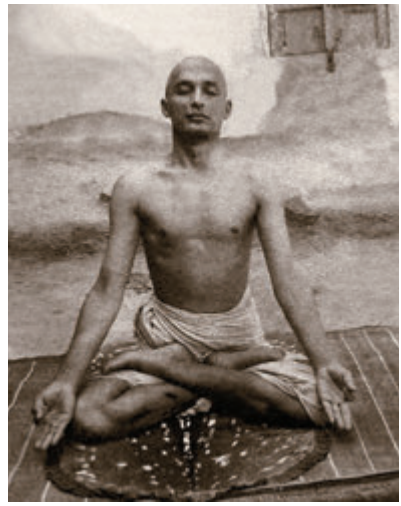

जब चित्त-वृत्ति अपने ध्येय-रूप आलम्बन पर एकतार और लगातार लगी रहती है, तथा कोई दूसरी वृत्ति बीच में नहीं आती, उस अवस्था को 'ध्यान' कहते हैं। धारणा-काल में एक-वृत्तिरूप ध्येय के बीच-बीच में अन्य विजातीय वृत्तियाँ भी आती-जाती रहती हैं और ध्याता, ध्यान तथा ध्येय-रूप त्रिपुटी विद्यमान रहती है। ध्यान में त्रिपुटी रहती है, किन्तु एक-वृत्तिरूप ध्येय सजातीय वृत्तियों के साथ प्रवाहवत् एकतार बना रहता है।

समाधि में यही ध्यान अभ्यास के बल से बढ़ते-बढ़ते त्रिपुटी-रहित हो जाता है और ध्येय-मात्र प्रकाशित रहता है। इस अवस्था में ध्यान से यही अन्तर है कि ध्यान-काल में ध्येय की अनुभूति होती है, किन्तु समाधि में ध्येय मात्र के रहने से ध्यान की क्रिया स्वरूप से शून्य-जैसी हो जाती है। अथवा यूँ कहें कि ध्यान में त्रिपुटी-सहित ध्येय प्रकाशित रहता है और समाधि में त्रिपुटी-रहित 'केवल ध्येयमात्र'।

ध्यान के समाधि में परिणत होते ही, चित्त-वृत्ति, जो ध्यान में ध्याता और ध्येय तथा ध्यान की क्रिया की चेतना के रूप में सजग थी, केवल ध्येयमात्र बनकर अपने स्वरूप से शून्य हुई जैसी रहती है। समाधि की इस प्रारम्भिक अवस्था को निर्वितर्क-सम्प्रज्ञात समाधि भी कहते हैं। यह सबीज समाधि है।

संक्षेप में चित्त को एकत्र कर एक ओर लाना धारणा, एक ही स्थान पर लगाए रखना ध्यान और ध्येय ही में सीमित हो जाना समाधि है। धारणा परिपक्व होकर ध्यान में और ध्यान ही समाधि में परिणत होता है। इन तीनों के समुदाय को यौगिक भाषा में संयम कहा जाता है। जब किसी विषय पर संयम करने को कहा जाता है तो यही अर्थ लगाना चाहिए कि उस विषय पर धारणा, ध्यान और समाधि का अभ्यास करना है। संयम में दृढ़ता आने से सम्प्रज्ञात का उदय होता है, और ध्येयमात्र रहता है। इस प्रज्ञा के प्रकाश से विवेकख्याति का साक्षात्कार होने लगता है।

यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार बहिरंग साधन हैं और धारणा, ध्यान और समाधि अन्तरंग साधन हैं सम्प्रज्ञात-समाधि के। बहिरंग साधनों से चित्त का बहिर्मुखी क्षेत्र सीमित होता जाता है, तथा अन्तरंग साधनों से चित्त की अन्तर्मुखी वृत्ति को निरोध-परिणाम की ओर उन्मुख किया जाता है।

मैं इसी क्षण सब की कुण्डलिनी जगा सकता हूँ!

स्वामी आत्माभिषेक सरस्वती

उक्त शब्द श्री स्वामीजी के श्रीमुख से उच्चरित हुए थे, 1981 में जबलपुर में मनाये गये गुरु पूर्णिमा महोत्सव के अवसर पर। इस महोत्सव में भाग लेने के लिये मुंगेर से एक समूह पूरे रेल कोच को जमालपुर से जबलपुर तक आरक्षित करा कर गया था। श्री स्वामीजी ने भी उसी कोच में यात्रा की थी। मेरे भी तीव्र इच्छा थी इस महोत्सव में भाग लेने की, किन्तु छुट्टियों की कमी के कारण मैं सीधे इसमें नहीं जा सका। जबलपुर में हमारे खान विभाग का संभागीय कार्यालय है और पड़ोस क्षेत्र में कोयला खानें भी हैं। संयोग से वहाँ कुछ काम निकल आया। काम के सिलसिले में मैं जबलपुर पहुँचा और चार-दिवसीय महोत्सव में भी भाग लिया। अगले दिन मैंने अपने संभागीय कार्यालय में कुछ काम निपटाया और फिर सरगूजा जिले में स्थित कोयला खानों में निरीक्षण के लिये चला गया। किन्तु इससे पूर्व गुरु पूर्णिमा महोत्सव के अवसर पर श्री स्वामीजी ने उक्त घोषणा कर तहलका मचा दिया। घटना क्रम नीचे दे रहा हूँ।

'मानस-भवन' नाम के एक बड़े सभागार में गुरु पूर्णिमा महोत्सव आयोजित हुआ था। उसमें पाँच हजार लोग तो बैठे ही होंगे। एक दिन शाम के सत्र में श्री स्वामीजी ने अचानक घोषित कर दिया– 'मैं चाहूँ तो इसी क्षण, जितने यहाँ बैठे हैं, उन सब की कुण्डलिनी जगा सकता हूँ।' यह सुनते ही सभी स्तम्भित-से हो गये। मैं तो अपना होश कुछ-कुछ खो बैठा। श्री स्वामीजी फिर कहने लगे, 'लेकिन मैं ऐसा करूँगा नहीं, क्योंकि जगा तो मैं दूँगा, पर उसे सम्हालेगा आपमें से कौन? आपकी कोई तैयारी जो नहीं है ...।'

उनके इस आश्वासन के बावजूद मैं अपना सन्तुलन कुछ हद तक खो चुका था। स्थिति किसी तरह नियन्त्रण में बनी रही। मेरे दो सहपाठी उस क्षेत्र की कोयला खानों में प्रबन्धक और उससे वरिष्ठ पद पर कार्यरत थे। उनमें एक स्टेशन पर मुझे लेने भी आया। मैंने गेस्ट हाउस के बजाय उसके घर पर ही ठहरने की इच्छा व्यक्त की। फिर मैं निरीक्षण कार्य में लग गया। शाम को मित्र और उनकी पत्नी से बातें होती थीं। पहले दिन वह कुछ नहीं बोला, किन्तु दूसरे दिन वह कह बैठा, 'तुम्हें क्या हो गया है? तुम ऐसे तो नहीं थे कभी, आदि-आदि।' मैंने उससे कहा, 'ऐसा कुछ भी नहीं है। तुम व्यर्थ ही चिंतित हो रहे हो।' इस पर वह बोला, 'नहीं! तुम कुछ खोये-खोये से लग रहे हो। कुछ बात जरूर है।' उसके इतना जोर देकर कहने पर मैंने भी अनुभव किया कि वह पूरी तरह गलत नहीं कह रहा है। मैं निश्चय ही अपने मूल स्वभाव में नहीं हूँ।

अगले दिन से दूसरे मित्र के यहाँ निरीक्षण कार्य आरम्भ किया। उसने भी कुछ वैसी ही टिप्पणी की तो मैंने कुछ अधिक गंभीरता से चिन्तन आरम्भ किया। निष्कर्ष यही निकाल पाया कि मुझे अवश्य ही उसी दिन से कुछ हो गया है, जिस दिन श्री स्वामीजी ने उक्त घोषणा की थी। मैं अपने कथनों और व्यवहारों पर पूर्ण नियन्त्रण नहीं रख पा रहा था। भाँग का सेवन करने के बाद मन की जैसी स्थिति हो जाती है, कुछ-कुछ वैसा ही मैंने अनुभव किया। उस स्थिति में मन कभी सन्तुलित तो कभी कुछ असन्तुलित हो जाया करता है।

अपना निर्धारित कार्य पूरा करने के बाद मैं धनबाद वापस आ गया। घर पहुँचने के बाद भी लगभग दस-बारह दिन तक मैं उसी स्थिति में झूलता रहा। उसके बाद मैं अपनी स्वाभाविक मानसिक स्थिति में लौट आया। बाद में मैंने इस पर यथेष्ट चिन्तन किया कि यह क्या था और ऐसा क्यों हुआ। यही निष्कर्ष निकाल पाया कि श्री स्वामीजी की उक्त घोषणा मात्र से मैं आन्तरिक रूप से उद्वेलित हो उठा था। ऐसा क्यों हुआ, मैं नहीं जानता पर यह प्रभाव मेरे मन पर लगभग पन्द्रह-सोलह दिन तक बना ही रहा। श्री स्वामीजी ने यदि सचमुच अपनी घोषणा को क्रियान्वित करने का प्रयास किया होता तो मुझ जैसों का क्या हाल हुआ होता, इसकी मैं सहज ही कल्पना कर सकता हूँ। श्री स्वामीजी की शक्तियाँ, प्रतिभाएँ और सामर्थ्य सचमुच अद्भुत और अवर्णनीय थे।

अजपा में चेतना का स्वरूप

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती प्रणीत 'अजपा-जप की साधना' से उद्धृत (स्वर्णिम संग्रह-4 में पुनर्प्रकाशित)

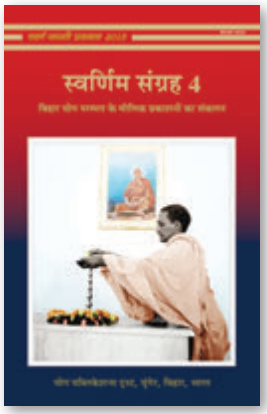

मनुष्य के तीन चेतन शरीर हैं—स्थूल, सूक्ष्म और कारण। साईकोलाजी में इसे कहते हैं—कॉन्श्यस, सब-कॉन्श्यस और अनकॉन्श्यस। इन तीनों के ऊपर एक और है, सुपर-कॉन्श्यस। हिन्दी में इनके नाम हैं—चेतन, अवचेतन और अचेतन मन। कोई भी मनुष्य अपने अनकॉन्श्यस को नहीं जानता। हम लोग यह नहीं जानते कि हमारे अन्दर क्या-क्या है। अनकॉन्श्यस में इतनी चीजें भरी हुई हैं कि उनकी वजह से मनुष्य सोचता और चाहता कुछ है पर करता कुछ और है। शान्ति पाने के लिये, समाधि पाने के लिये, शक्तिशाली, समर्थ और सर्वज्ञ बनने के लिये रास्ता यही है कि अपने अनकॉन्श्यस को बाहर निकालो, उसे एकदम स्वच्छ करो।

अनकॉन्श्यस में क्या-क्या है, यह ऊपर से बिल्कुल पता नहीं चलता। सूखी धरती को देखने से केवल मिट्टी-ही-मिट्टी दिखती है, और कुछ नहीं, किन्तु जैसे ही उस पर वर्षा का पानी पड़ता है, उसमें से घास-जंगल निकल आता है। उसी प्रकार अनकॉन्शयस में जो मल जमा है, वह कोई आघात पड़ने पर ही उभरता है। गर्मी के महीने में तो धरती सूखी रहती है। जैसे ही पानी पड़ा उससे घास निकल आती है। वर्षा ऋतु में पेड़-पौधे भी उसमें से निकल पड़ते हैं। फिर उसी धरती में धान का बीज उग आता है, गेहूँ की बालियाँ उग जाती हैं। हमारा अनकॉन्श्यस भी इसी प्रकार का है। इसमें अनेक बीज दबे पड़े हैं। इसे साफ करने के लिये पहले इसमें दबी हुई सभी चीजों को उखाड़ फेंकना होगा।

अनकॉन्श्यस को साफ करने का रास्ता है गहन शिथिलीकरण। किसी भी मनुष्य को गहन शिथिलीकरण में ले जाकर उसके अंदर के संस्कारों को बाहर निकाला जा सकता है। शवासन, ध्यान या त्राटक जैसे अभ्यास करने से शिथिलीकरण होता है, तनाव कम होते हैं। इसी स्थिति में मनुष्य यदि मन में जो आता जाए, बोलता जाए, तो उसका चित्त याने अचेतन मन साफ होता है। जब मन पूरी तरह से तनाव-रहित रहता है, उसी समय अपने अवचेतन मन को पूरी तरह जान सकता है।

शिथिलीकरण प्राप्त करने का एक और उपाय है अजपा-जप। अजपा-जप करते-करते कुछ देर में मनुष्य का चेतन मस्तिष्क शिथिल हो जाता है। शारीरिक-चेतना के

गिरते ही मनुष्य अनकॉन्श्यस में चला जाता है। अनकॉन्श्यस के पूर्व सबकॉन्श्यस की देहरी पार करनी पड़ती है। सबकॉन्श्यस है लिंग-शरीर और अनकॉन्श्यस है कारण-शरीर। अजपा के द्वारा मनुष्य पहले स्थूल में रहता है, फिर अवचेतन में जाता है, और अवचेतन को पार करने के बाद अचेतन में चला जाता है। हर अवस्था के लक्षण अलग-अलग हैं।

जब मनुष्य सबकॉन्श्यस में प्रवेश करता है, तब उसे अपने अन्दर की सभी दबी इच्छायें, वासनायें और संस्कार स्वप्न के रूप में दिखते हैं। शुरू में ये स्वप्न उल्टे-सीधे और विकृत रूप में आते हैं। स्वाभाविक-अस्वाभाविक, प्राकृतिक-अप्राकृतिक, उचित-अनुचित, अच्छे-बुरे, सुखदायी-दु:खदायी, सभी प्रकार के स्वप्न मनुष्य देखता है। स्वप्न देखकर मनुष्य अपने पर विश्वास नहीं कर पाता कि स्वप्न में उसने ऐसा क्यों किया। लेकिन स्वप्नों पर आश्चर्य नहीं करना चाहिये। मनुष्य के जीवन में उल्टे, सीधे, अस्वाभाविक स्वप्नों का बड़ा महत्त्व है। वे ही तो मनुष्य की चेतना को प्रकट करते हैं। स्वप्नों का अध्ययन करने से मनुष्य अपनी चेतना का विश्लेषण करता है।

अजपा करते-करते जब योग साधक सबकॉन्श्यस में पहुँचता है तो स्वप्न आने लगते हैं। अजपा करने के साथ-साथ साधक को इन स्वप्नों को द्रष्टा की तरह देखते जाना चाहिये। सभी संस्कार धीरे-धीरे उसी प्रकार बाहर निकलेंगे जिस प्रकार धरती में से घास ऊपर निकलती है। जैसे-जैसे अन्त:करण शुद्ध होता जाता है, वैसे-वैसे स्वप्न भी शुद्ध और सतोगुणी होते जाते हैं। स्वप्न ही हमारे सबकॉन्श्यस और अनकॉन्श्यस का दर्पण है। ध्यान योग की क्रिया से यही लाभ होता है। इसलिये प्रत्येक मनुष्य को, चाहे वह आस्तिक हो या नास्तिक, ध्यान अवश्य करना चाहिये। यहाँ धार्मिकता और अधार्मिकता का कोई प्रश्न नहीं उठता। हर एक मनुष्य, चाहे वह कामी, क्रोधी, लम्पट, सन्त, वैरागी या साधु हो, उसके अंत:करण की ऐसी ही बनावट है। हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई, बौद्ध या पारसी होने से स्थूल, लिंग और कारण शरीर का अस्तित्व नहीं मिटता। संस्कारों का बंडल सभी के साथ रहता है। इसे खाली करने का अचूक नुस्खा है अजपा-जप।

पहले मनुष्य को उल्टे स्वप्न आते हैं, फिर प्रतीकात्मक सपने और अन्त में सही और सच्चे सपने। कारण शरीर में पहुँचने पर एक ऐसी भी अवस्था आती है कि सारे स्वप्न समाप्त हो जाते हैं और मनुष्य शून्य में प्रवेश कर जाता है। वहाँ कुछ भी नहीं रहता। न जागृति, न सुषुप्ति, न रंग, न गंध, न स्पर्श और न स्वाद। समाधि की निर्विकल्प अवस्था यही है। अजपा का अभ्यास आपको अन्नमय, प्राणमय, मनोमय और कारण शरीर को पार कराके समाधि के चरम शिखर पर ले जा सकता है।

चेतना के विभिन्न स्तरों को पार करने के क्रम में एक ऐसी अवस्था भी आती है, जहाँ मनुष्य को सच्चे दृश्य दिखते हैं। उसे अपने स्थूल लोक की बातें भी मालूम

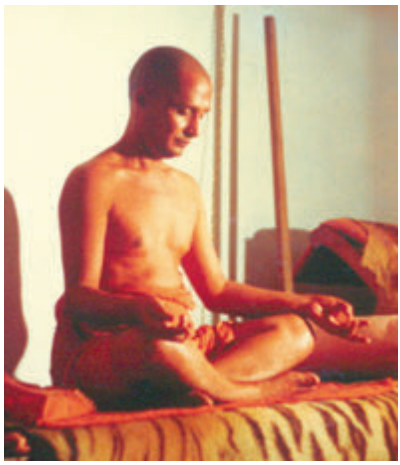

करने की क्षमता प्राप्त होती है। साधक को भूत की बातें भी मालूम पड़ती है। गर्भ के संस्कार मालूम पड़ते हैं, और उससे भी आगे पूर्व-जन्म की बातें भी प्रत्यक्ष होती हैं। पर ऐसा तभी होता है जब चित्त संस्कारशून्य हो जाता है, जब मनुष्य अपना व्यक्तित्व एकदम खाली कर देता है, स्वमानित और स्वकल्पित बन्धन एवं बौद्धिक चेतना से ऊपर उठ जाता है। इसके लिये सबसे पहली शर्त है गहन शिथिलीकरण। अजपा के द्वारा इस क्रिया को सिद्ध किया जा सकता है।

साइको-एनालिसिस में मनोवैज्ञानिक रोगी को पहले शिथिलीकरण की अवस्था में ले जाते हैं, तब फिर उससे बातें करते-करते उसके अनकॉन्श्यस की चीजों को बाहर निकालते हैं। अनकॉन्श्यस को उभारने के लिये कोई आधार चाहिये। यह आधार बनता है 'सो' और 'हम्' का निरंतर जप। 'सोहं' का जप श्वास के साथ-साथ बराबर कीजिये। साथ-साथ चेतना को भी किसी केन्द्र के माध्यम से पकड़े रहिये। यदि ऐसा नहीं करोगे तो आपको निद्रा आ जाएगी। निद्रा में तो मनुष्य अपनी जाग्रत चेतना खो देता है, और तब स्वप्न में उसे अपने विचारों और स्वप्न के कर्मों पर अधिकार नहीं रह जाता। ध्यान में और अजपा में नींद नहीं आने देनी चाहिये। अजपा में चेतना की एक हल्की किरण से साधक को स्वप्न देखते हुए भी यह भान हमेशा रहता है कि मैं देख रहा हूँ। निद्राकाल के स्वप्न में मनुष्य को यह भान नहीं रहता कि मैं स्वप्न देख रहा हूँ, यद्यपि जगने पर स्वप्न की घटनाओं की सब स्मृति लेकर वह लौटता है। इसलिये ध्यान की अवस्था और निद्रा की अवस्था, देखने से एक लगने पर भी दोनों में बहुत बड़ा अंतर है। ध्यान में मनुष्य स्वप्न देखता है, उसकी स्मृति भी रखता है और हर क्षण अपनी चेतना की डोर भी पकड़े रहता है। चेतना रहने से वह अपने संस्कार को देख सकता है, किन्तु यदि वह अपने को साक्षी भाव से नहीं देखेगा तो संस्कार-दर्शन में खो जाएगा। अजपा के सहारे वह अपनी चेतना को अपनी पकड़ में रख सकता है।

अजपा-जप अपने अचेतन के क्षेत्र में उतरने का एक वैज्ञानिक तथा पूर्ण तरीका है। अचेतन में नित्य नये-नये संस्कारों की गर्द और कूड़ा-करकट जमा होते रहता है, जो रोग, शोक, चिन्ता और व्याधि पैदा करता है। जो लोग नित्य ध्यान की क्रिया से अपने अनकॉन्श्यस के पुराने कूड़े को साफ करते हैं तथा नित्य नये कूड़े को जमा होने से भी रोकते हैं, वे ही स्वस्थ ओर दीर्घायु होने का रास्ता तैयार कर रहे हैं।

मुझे क्षितिज के पार जाने दो

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती प्रणीत 'बम् लहरी' से उद्धृत

जीवन को चलने दो, जैसा चलता है, चलना चाहता है।
रहने दो अपना ज्ञान, अपनी फिलॉसफी, अपनी आध्यात्मिकता,
अपना विज्ञान, अपने सामाजिक नियम और अपनी धार्मिकता।
चलने दो मेरा जीवन, जैसे सुन्दर बचपन,
मुझे पक्षियों की तरह उड़ना अच्छा लगता है।
रहने दो मुझे अज्ञानी, नहीं चाहिए तुम्हारा ज्ञान, तुम्हारी विद्वत्ता।
मुझे तो जंगलों में बसना ही प्रिय है।
पक्षियों के कल-कूजन के साथ मुझे गा लेने दो, रोको मत।
सूखे पत्तों की चरमराहट में मुझे दौड़ने दो, रोको मत।
उगते हुए सूरज के सामने मुझे प्रकृति की ओर दृष्टिपात करने दो।
वन के पत्तों, सरिता के जल और आकाश की वायु पर मुझे जीने दो।
रहने दो अपनी सभ्यता, अपना बड़प्पन, अपनी कीर्ति और अपना धर्म।
मुझे जाने दो जहाँ मैं चाहूँ।
कहाँ?
दूर, बहुत दूर, क्षितिज के उस पार,
जहाँ लौकिक रश्मियों का पहुँचना नामुमकिन है।
अपने सामाजिक नियमों से मुझे मत बाँधो,
अपने धार्मिक विश्वासों में मुझे मत भुलाओ,
अपनी वैज्ञानिक खोजों से मुझे हराओ मत।

कुछ स्वर्णिम यादें और अनुभूतियाँ

श्रीमती गीता सहाय, शिव भवन, भागलपुर

श्री स्वामी सत्यानंद जी का प्रथम दर्शन मेरे धनबाद महाविद्यालय में उनके आगमन पर हुआ। हमलोग उनके प्रवचन पर इतने मंत्रमुग्ध हो गए कि कब उनका प्रवचन समाप्त हुआ, कुछ पता ही नहीं चल पाया। हमें पता चला कि वे बहुत विद्वान् एवं चौदह भाषाओं के ज्ञाता हैं। मैंने सोचा कि कभी गुरु बनाना होगा तो इन्हें ही बनाऊँगी।

फिर मेरी शादी ऐसे परिवार में हुई जहाँ श्री स्वामीजी के बिहार आगमन पर उनका पहला पदार्पण हुआ। श्री स्वामीजी हमारे यहाँ परिवार के एक सदस्य की तरह रहते थे। मेरी सासु माँ एवं मेरे श्वसुर जी श्री स्वामीजी के गुरु, स्वामी शिवानन्द सरस्वती जी के शिष्य थे, इसलिये उनका परिचय ऋषिकेश से ही था। वे मेरी सासु माँ को बहन मानते थे। जब भी वे भागलपुर आते, हमारे ही यहाँ रहते।

जब मेरी शादी हुई, मुंगेर में आश्रम की स्थापना हो चुकी थी, जो शिवानन्द आश्रम के नाम से जाना जाता था। वे अक्सर भागलपुर आते रहते थे और हमारे यहाँ ही ठहरते थे। हमलोग भी मुगेंर बराबर जाते थे और इस प्रकार उनका सान्निध्य मिलता रहता था। फरवरी 1969 में श्री स्वामीजी अपने बाईस विदेशी शिष्यों के साथ हमारे यहाँ आये। एक स्थानीय विद्यालय में उनका दस दिनों का कार्यक्रम

था। सबेरे चार बजे उठकर सभी तैयार हो जाते और हल्का चाय-नाश्ता कर सात बजे कार्यक्रम में चले जाते और नौ बजे आकर भोजन आदि से निवृत्त होते थे। थोड़ी देर आराम करने के बाद श्री स्वामीजी का सत्संग होता था, जिसमें उनके शिष्य लोग भी भाग लेते थे। भजन-कीर्तन भी होता था। शाम के भोजन के बाद फिर कार्यक्रम में जाते थे और आठ बजे वापस आते थे। मैं श्री स्वामीजी से पूछती कि चाय या कॉफी कुछ लाऊँ तो वे कहते कि सिर्फ एक कप कॉफी मेरे लिये। लेकिन मैं जैसे ही पीछे मुड़ती, तो सभी कहते कि उन्हें भी चाहिये। श्री स्वामीजी इशारा करते कि सभी के लिये ले आओ। लेकिन जब सभी के लिये लाती तो मुझे कहते कि मैंने तो सिर्फ अपने लिये कहा था, तुम सभी के लिये क्यों लाई। इस प्रकार हमेशा हंसी-मजाक किया करते थे। उन बाईस शिष्यों में एक ऑस्ट्रेलियन हेयर-डिज़ाइनर भी थे जो हिन्दी बिल्कुल नहीं समझते थे। मेरे पति उनके लिये नाई शब्द का प्रयोग करते तो श्री स्वामीजी बहुत हंसा करते थे। इस प्रकार दस दिन कैसे बीत गए पता ही नहीं चला।

फिर तो अनेकों बार उनके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ परन्तु यह जो दस दिनों का सान्निध्य प्राप्त हुआ, वह तो मेरे लिये अनमोल यादगार है। जब मुझे पुत्र की प्राप्ति हुई तो मेरे बड़े जेठ ने उसका नाम श्री स्वामीजी के नाम पर सत्यजित रखा। श्री स्वामीजी का भागलपुर और हमलोगों का मुंगेर आना-जाना लगा रहता। श्री स्वामीजी के साथ कभी-कभी स्वामी निरंजन जी भी आते थे। उस समय वे काफी छोटे थे और गाड़ी की छत पर बैठ जाते थे। मैं उन्हें खाने के लिये नीचे उतरने को कहती तो श्री स्वामीजी कहते कि वह नहीं उतरेगा, उसे वहीं दे दो!

एक बार गुरु पूर्णिमा के अवसर पर हमलोग मुंगेर गये। उस समय शिवानन्द आश्रम ही था जो काफी छोटा था। पूजा-पाठ के बाद श्री स्वामीजी हमलोगों को अपने कमरे में आराम करने ले गये। माँ कुर्सी पर और हमलोग सभी जमीन पर बैठ गये तो उन्होंने हाथ पकड़कर उन्हें अपने बिस्तर पर बैठाकर कहा कि आप मेरी बहन हैं, इसलिये आपको यहाँ आराम करना होगा।

एक बार हमारे घर ऋषिकेश के एक संन्यासी, जो अक्सर आते थे, आए। उन्होंने माँ को एकमुखी रुद्राक्ष दिखाया, जिसे माँ ने उनसे खरीद लिया। वे संन्यासी भोजन के बाद यह कहकर चले गये कि शाम तक आऊँगा और सुबह चला जाऊँगा। थोड़ी देर बाद से माँ की तबियत बिगड़ने लगी और कुछ देर बाद ज्यादा बिगड़ गई। उन्हें लगा कि शायद यह एकमुखी रुद्राक्ष के कारण ही है। उन संन्यासी को बहुत ढूंढा गया, लेकिन फिर वे कभी नहीं मिले। तब माँ ने श्री स्वामीजी को मुंगेर फोन करवाया और वे जल्द ही आ गये। माँ ने जब उन्हें सारी बातें बतलाईं तो उन्होंने रुद्राक्ष को देखना चाहा। माँ ने मुझसे उन्हें पूजाघर ले जाने को कहा। पूजाघर में जब उन्हें उसे उठाकर दिखाना चाहा तो उन्होंने मुझे उसे छूने नहीं दिया। स्वयं उसे

चादर से उठाकर अपनी कमर में खोस लिया और मुझसे कहा कि कोई भी चीज जितनी अच्छी होती है, वह उतनी ही बुरी भी हो सकती है। तुम लोगों को जो कुछ चाहिये मुझसे माँगो, मैं दूँगा। उन्होंने माँ से कहा कि आप गुरुवार को जो कीर्तन घर में करवाया करती थीं, उसे बन्द क्यों करवा दिया है, फिर से शुरू करवायें। और मेरी ओर देखकर कहा कि वह बन्द नहीं होना चाहिये। आज भी वह कीर्तन हर गुरुवार को होता आ रहा है।

जब श्री स्वामीजी यहाँ शुरू में आए थे तो वे एवं मेरे पति एक ही कमरे में रहा करते थे। इसलिये मेरे पति को वे अपना रूम-पार्टनर बतलाते। कहते कि यह पहले मुझसे बराबरी से बहस किया करता था। हमारे होटल निहार का उद्घाटन भी उन्हीं के दिव्य करकमलों से हुआ था, जब भी मिलते तो होटल के विषय में अवश्य पूछते।

जब श्री स्वामीजी रिखिया आ गये और हम पहली बार उनके पास गये तो उनके परिसर में एक कुटिया थी, जिसमें चारों तरफ सिर्फ पर्दा ही था और हवन कुण्ड था, एक कुआँ था और एक कमरा था, जिसके विषय में उन्होंने बतलाया कि महर्षि अरविन्द अंग्रेजों से छिपकर दो साल तक यहीं रहे थे। श्री स्वामीजी ने मुझसे कहा कि तुम्हारे यहाँ तो गाय है न, मेरे लिये गोयठा बनाकर भेजो। मैं अक्सर उपले और घी भेजा करती थी, क्योंकि वे हवन कुण्ड में गोयठा डालकर हवन करते और उसी में अपने लिये रोटी पकाते और घी लगाकर खाते। उस हवन की राख को शरीर में भस्म की तरह लगाते। हमें उस कुएँ का पानी पिलवाकर कहा कि देखो कितना मीठा पानी है।

फिर तो रिखिया भी हमलोग बराबर जाने लगे, कभी सीता कल्याणम् में तो कभी किसी और कार्यक्रम में। मेरी बड़ी बेटी नन्दिनी की शादी जब हुई तब उसके सास-श्वसुर उसे और उसके पति को लेकर देवघर गये, पूजा करवाने। जब ये लोग मंदिर से पूजा कर लौटे तो नन्दिनी ने श्री स्वामीजी का दर्शन और आशीर्वाद पाने की इच्छा जताई। होटल के मालिक ने कहा कि वे अभी किसी से मिल नहीं रहे हैं। लेकिन नन्दिनी ने स्वामी सत्संगी जी से फोन कर कहा कि वह श्री स्वामीजी का आशीर्वाद लेना चाह रही है। श्री स्वामीजी ने उनलोगों को आने की इजाजत दे दी। उन लोगों ने वहाँ पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया। नन्दिनी ने श्री स्वामीजी से कहा, 'सभी ने कहा कि आप किसी से मिल नहीं रहे हैं तो मैं निराश हो गई थी कि आपका दर्शन और आशीर्वाद नहीं हो पायेगा,' तो उन्होंने कहा, 'तुम नाटू की बेटी हो तो मेरी भी बेटी हो। उस घर के सभी बच्चे मेरे अपने ही बच्चे हैं।' एक घंटे तक बहुत बातें कीं और आशीर्वाद के साथ सुहाग-पिटारी देकर विदा किया। जब मेरी छोटी बेटी जया की शादी हुई तो वह भी श्री स्वामीजी का आशीर्वाद लेने रिखिया गई और उसे भी उन्होंने अपना आशीर्वाद एवं सुहाग-पिटारी दी। बेटे-बहू को भी उन्होंने बहुत आशीर्वाद के साथ सुहाग-पिटारी दी।

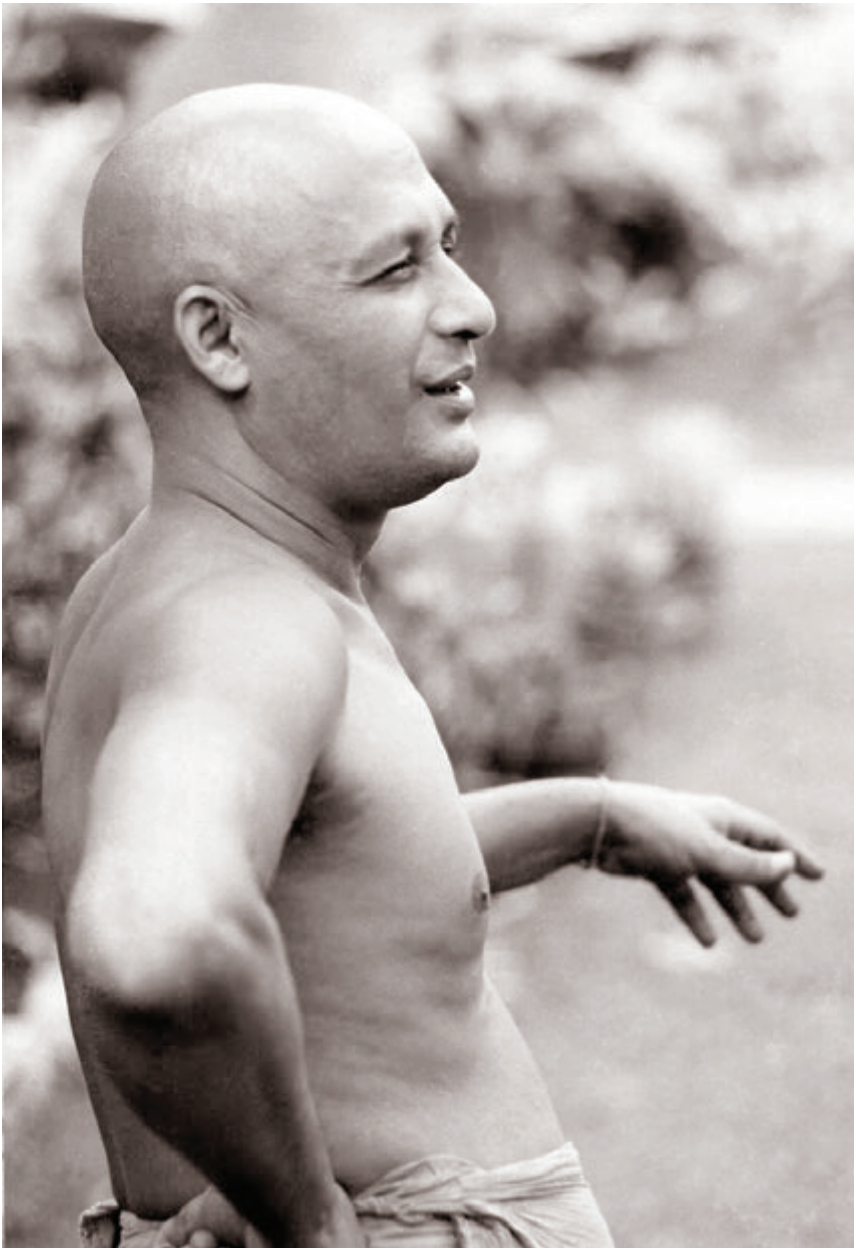

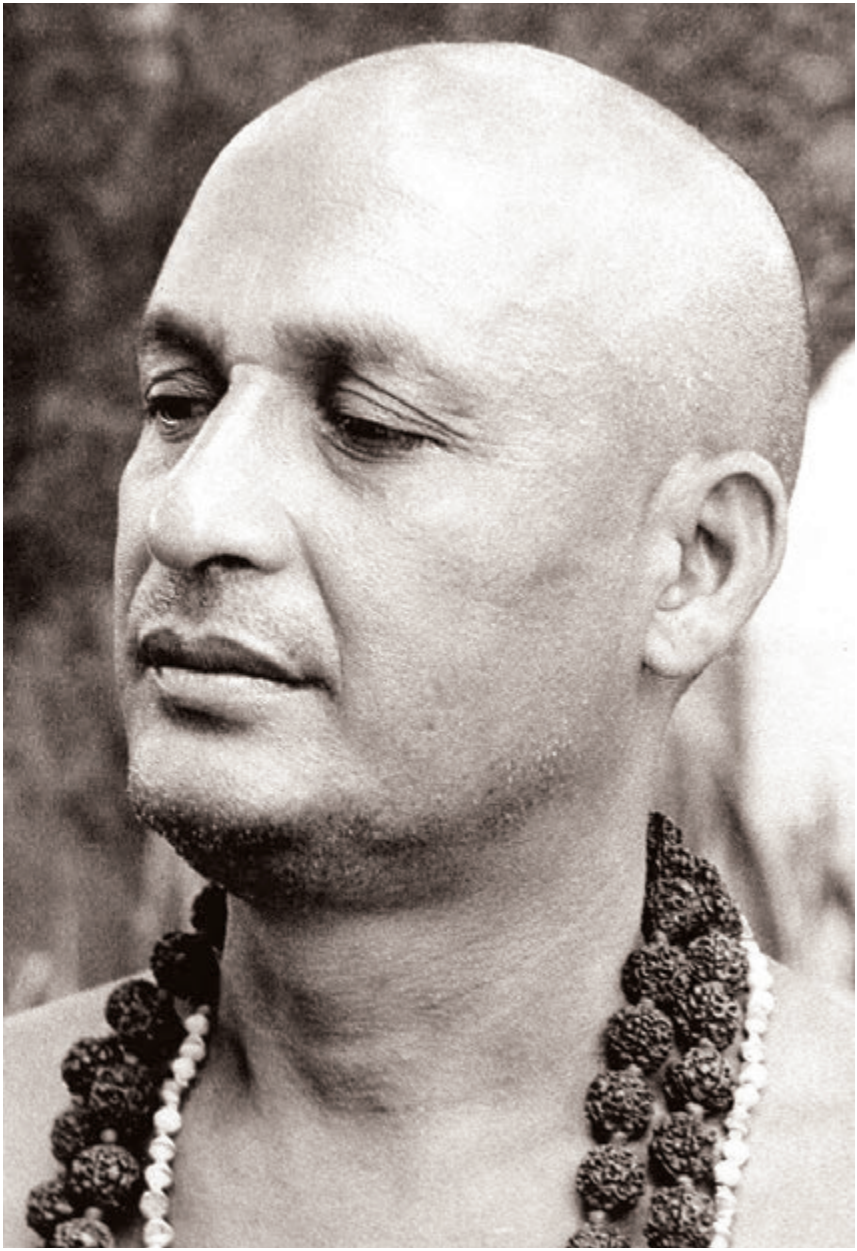

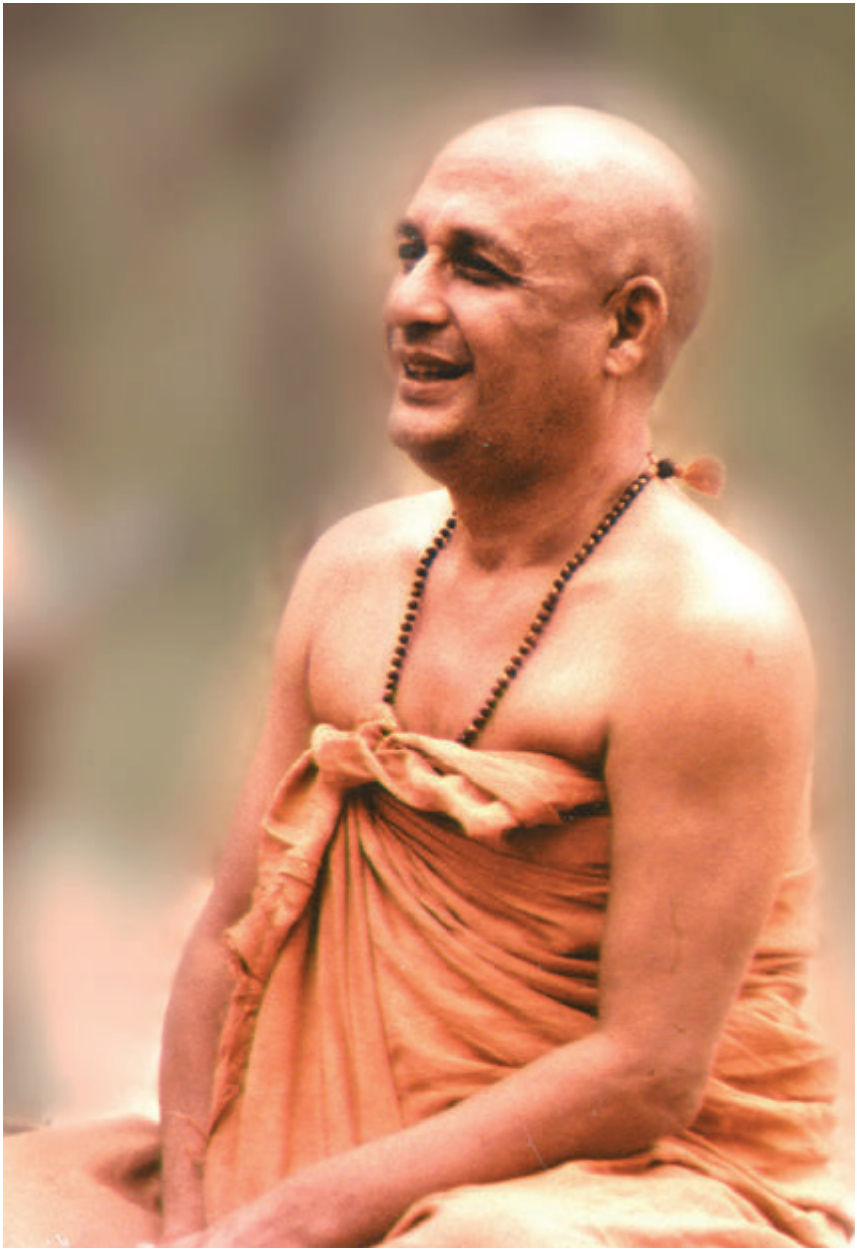

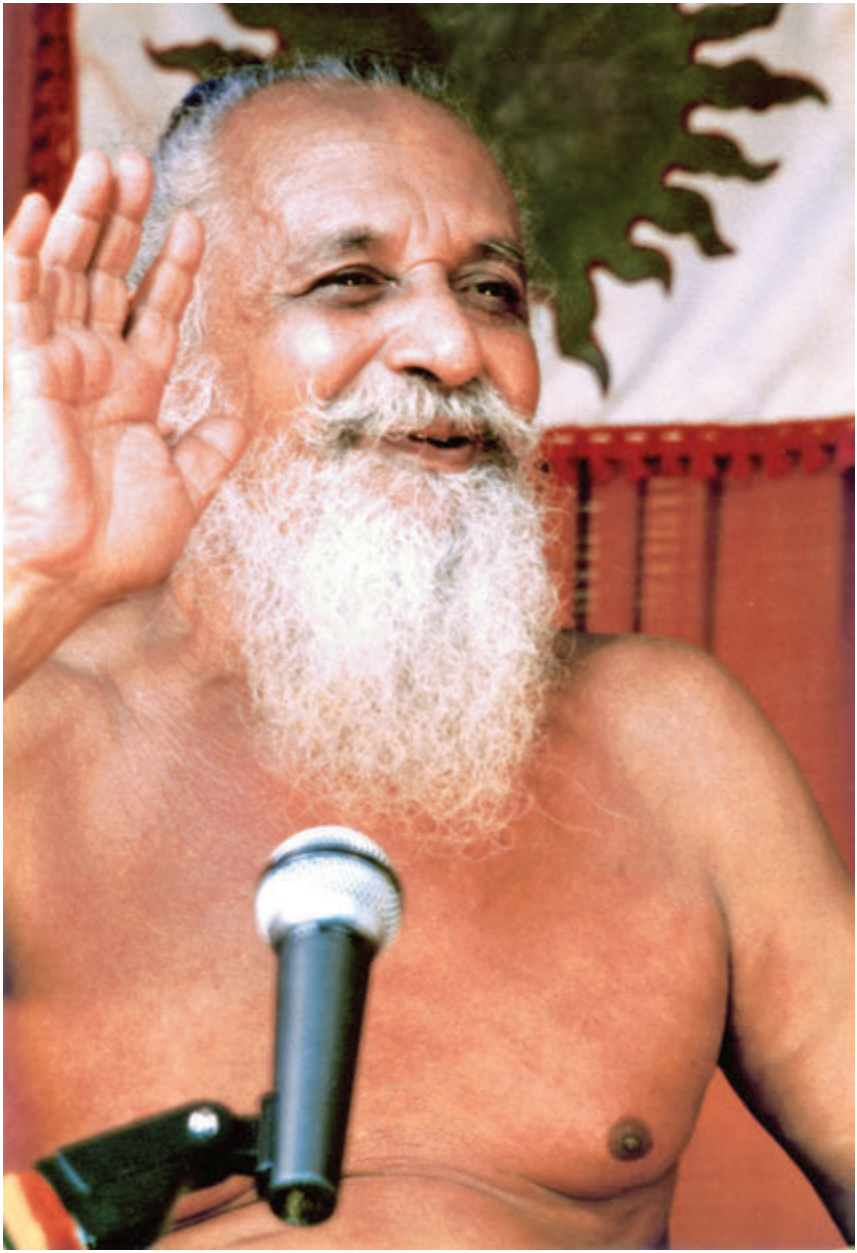

जब श्री स्वामीजी ने स्वामी निरंजनानन्द जी को अपना स्फटिक शिवलिंग और माला देकर अपना उत्तराधिकारी घोषित किया तो उस अद्‌भुत दृश्य को देखने का सौभाग्य हमें भी प्राप्त हुआ।

जब मेरे पति का स्वर्गवास हो गया तो मैं, मेरी एक भांजी, मेरी बेटी और बच्चे रिखिया गये। मेरी भांजी के भी पति और माँ की मृत्यु कुछ दिन पहले हुई थी। उन्होंने ज्यादा मृत्यु के विषय में ही बातें की। वहाँ कुछ लोग और भी थे, उनसे श्री स्वामीजी ने कहा कि यह मैं तुमलोगों को नहीं, केवल इन्हें कह रहा हूँ। मेरी भांजी के यह पूछने पर कि क्या सनातन रीति से श्राद्ध करना आवश्यक है, उन्होंने कहा कि अत्यंत आवश्यक है, क्योंकि गरुड़ पुराण ग्रंथ, जिसमें इसका वर्णन है, वह ऐसे ऋषि द्वारा लिखा गया है, जिन्हें भूत, भविष्य और वर्तमान का ज्ञान था। चलते समय मेरी आँखों से आँसु गिरने लगे। उन्होंने कहा कि क्या करोगे, जिंदगी ऐसे ही चलती है। मुझे ऐसा लगा कि मेरे घाव पर मलहम लग गया हो। फिर बच्चों के सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया और फोटो खिंचवाई। यह उनका आखिरी दर्शन था।

अभी एक साल पहले मैं काफी बीमार पड़ी। अचेतन अवस्था में उन्हें अक्सर देखा करती एवं उनसे लड़ती कि आपने मुझे क्यों बचाया क्योंकि मैं अपाहिज बनकर नहीं रहना चाहती हूँ। आज उनके आशीर्वाद से मैं काफी स्वस्थ महसूस करती हूँ। अभी दो-चार दिन पहले मैंने सपने में देखा कि श्री स्वामीजी मेरे घर आये हैं और चारों तरफ घूम-घूम कर देख रहे हैं। मुझे कहते हैं कि मैं तुम्हारा घर देखने आया हूँ। मैं जल्दी-जल्दी उनके लिये भोजन बनाने लगती हूँ, तो वे कहते हैं कि जल्दबाजी की जरूरत नहीं है, आराम से करो, मैं अभी यहाँ बहुत देर तक हूँ। फिर मेरी आँखें खुल गईं। देखा कि सवेरा हो चुका है और एक दिव्य आलोक चारों ओर फैला हुआ है।

मेरे पुत्र ने मुझसे थोड़ा लिखने को कहा और मैंने ढेर सारी बातें उनकी यादों में लिख डालीं। उन्हें मेरा कोटि-कोटि प्रणाम!

पुरुषार्थ और प्रारब्ध

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती प्रणीत 'रिखियापीठ सत्संग-4' से उद्धृत

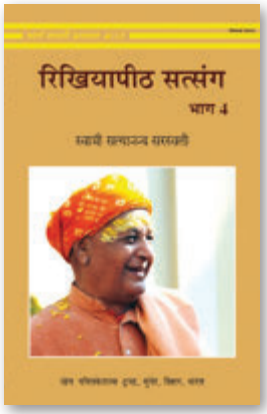

इन्सान बहुत छोटा प्राणी है। यह सृष्टि कितनी विशाल है, इसमें कितने हजारों सौर-मण्डल हैं, कितने लाखों सूरज हैं, कितनी लम्बी दूरियाँ हैं, इसका हम अन्दाज भी नहीं लगा सकते। अगर सोचने बैठें तो न काल का अंत कहीं पता चलता है, न देश का। इतनी बड़ी सृष्टि में हमारा अस्तित्व ही कहाँ है?

इतना ही मानना पड़ेगा कि सब कुछ पूर्वनिश्चित है। इतनी विशाल सृष्टि में, जिसके बारे में तुम लोगों को थोड़ी-सी झलक दी है, यह मानना पड़ेगा कि जो हो रहा है वह निश्चित है, डरने की कोई बात नहीं है। अगर डरोगे तो वह भी निश्चित है! भय भी निश्चित है, चिन्ता, वासना, त्याग और मोक्ष भी निश्चित हैं। सब का समय निर्धारित है। इस सृष्टि का जो कम्प्यूटर है, उसका सब सॉफ्टवेयर निश्चित है। यह दुनिया एक निश्चित कानून पर चलती है। हम लोग यह नहीं कह सकते कि हमारे पुरुषार्थ से ऐसा हुआ या उसके पुरुषार्थ से वैसा हुआ। पुरुषार्थ नाम की कोई चीज नहीं है। पुरुषार्थ प्रारब्ध का अंश है। मैं पुरुषार्थ और कर्म करने से हतोत्साह नहीं कर रहा हूँ, लेकिन यह तय है कि सब चीजें निश्चित हैं। मशीन से लेकर दिमाग तक; दिमाग से लेकर सौर-मण्डल तक; सौर-मण्डल से लेकर समस्त ब्रह्माण्ड तक, सब नियत है।

अगर इस सृष्टि में कोई चीज नियत न हो, तब तो इसमें अराजकता फैल जाएगी। चाँद-सूरज अपनी मर्जी से उदय होंगे, गंगा जी कलकत्ते से हिमालय की ओर जाएँगी! बृहदारण्यक उपनिषद् में याज्ञवल्क्य ने गार्गी से यही बात कही जो मैं तुमसे कह रहा हूँ। गार्गी एक ब्रह्मवादिनी संन्यासिनी थी। एक बार राजा जनक का दरबार लगा हुआ था। उसमें जनक बैठे थे, याज्ञवल्क्य, सुलभा, गार्गी वगैरह भी बैठे थे। राजा जनक ने अपने मंत्री से ऐलान करवाया कि आप लोगों में जो अपने को सबसे अधिक विद्वान् समझता है, वह मेरी दस हजार गायों को ले जाए। सभा में बड़े-बड़े विद्वान् थे, लेकिन सब चुप रह गए। कौन कहे कि मैं सबसे बड़ा विद्वान् हूँ, नहीं तो दूसरा चुनौती दे देगा।

तब याज्ञवल्क्य उठे। उन्होंने अपने शिष्य से कहा, 'सोमश्रवा, हाँक कर ले जाओ सब गायों को।' जैसे ही याज्ञवल्क्य ने यह कहा, सभी विद्वान् खड़े हो गए, बोले, 'तुम सबसे बड़े विद्वान् कैसे बन गये?' याज्ञवल्क्य ने कहा, 'कुछ भी पूछ

लो हमसे, जवाब दे देंगे।' अब विद्वानों ने याज्ञवल्क्य से एक-के-बाद-एक प्रश्न करने शुरू किये। अन्त में आई गार्गी। गार्गी ने प्रारब्ध के बारे में यही सवाल किया, जिस पर उन्होंने कहा–

एतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गि सूर्याचन्द्रमसौ विधृतौ तिष्ठत।

हे गार्गी, यह जो अक्षर प्रशासन है, इसमें चन्द्रमा और सूरज अपने अलग-अलग नियम पर चलते हैं। गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त अटल है, उसे कोई तोड़ नहीं सकता। चन्द्रमा और सूरज अपने समय पर उदित होंगे। कोई नदी अपना नियम भंग नहीं कर सकती, वह अपने रास्ते पर चलेगी। अगर यह निश्चित है, तो फिर सब कुछ निश्चित है। अगर प्रकृति के नियम पूर्वनियोजित हैं, तब फिर मेरी या तुम्हारी मृत्यु भी पूर्वनियोजित नहीं है क्या?

फिर तो कर्म भी पूर्वनियोजित होंगे।

कर्म भी नियति के अन्दर आते हैं। अगर तुम जी-तोड़ मेहनत करते हो, यह तुम्हारी नियति है। नियति का मतलब जो नियत है। एक और एक तीन नहीं, दो होता है, यह नियत है। जो चीज नियम के अनुसार चलती है, वह नियत होती है। बिना नियम के कुछ नहीं चल सकता, न सूरज, न चन्द्रमा, न राशियाँ, न पानी, न तुम, न मैं। नौ महीने तुम्हारी माँ ने तुम्हें पेट में रखा, कैसे रखा? पानी में डूबे हुए थे तुम। जबान बंद, आँख बंद, कान बंद, सब बंद था, मछली के बच्चे की तरह।

नौ महीने तक तुम जिन्दा रहे बिना साँस के। तुम्हारी माँ साँस ले रही थी और तुम जी रहे थे। किस नियम के बल पर? आदमी खाता है तो उससे हड्डी बनती है, लहू बनता है, हॉर्मोन्स बनते हैं, वीर्य बनता है, बाल बनते हैं, नाखून बनते हैं, टट्टी-पेशाब बनता है। सब जगह नियम लागू हैं। कहीं पर भी कोई विकल्प या व्यवधान नहीं मालूम पड़ता है।

इसलिए हमेशा इस बात को स्वीकार करो कि एक नियम है, जिसके अधीन सब कुछ है। अब अगर तुम अपने कर्म की बात कर रहे हो तो वह अपनी जगह ठीक है, पर याद रखो वह भी नियम के अन्तर्गत आता है। नियम के अन्तर्गत तुम दफ्तर जाते हो, वहाँ काम करते हो। पुरुषार्थ पूर्वनियोजित है।

इसका मतलब स्वेच्छा या पुरुषार्थ नाम की कोई चीज नहीं, प्रारब्ध ही सब कुछ है?

स्वेच्छा? किस चीज की स्वेच्छा? तुम हो कौन? एक छोटे-से इन्सान! इस विशाल सृष्टि में तुम्हारी हैसियत ही क्या है? इस अनंत सृष्टि में तुम कीड़े-मकोड़े की तरह हो। सृष्टि को छोड़ो, सारे हिन्दुस्तान में ही अगर तुम अपने को अनुपात की दृष्टि से देखो तो तुम्हारा पता ही नहीं कहीं। हिन्दुस्तान को भी छोड़ दो, केवल बिहार को ही ले लो। बिहार की जनसंख्या में अगर तुम अपना अनुपात निश्चित करोगे तो तुम कहीं हो ही नहीं, एक अणु के बराबर भी नहीं हो।

हम इस उम्र में आकर यही समझे हैं कि स्वेच्छा या पुरुषार्थ नाम की कोई चीज नहीं है। अगर है तो प्रारब्ध के अन्तर्गत है। तुम पुरुषार्थ कर रहे हो, क्योंकि यही तुम्हारा प्रारब्ध है। तुम कर्म करते हो, क्योंकि तुम्हारा एक मन है। उपनिषदों में *एकोऽहम् बहुस्याम्* कहकर कर्म के इस विषय को स्पष्ट किया गया है। पर फिर भी भ्रांति होती है। सबको भ्रांति है, अहंकार से तो भ्रांति होगी ही। पर एक मुकाम पर पहुँचकर आदमी को सब जानकारी हो जाती है। हम भी किसी जमाने में पुरुषार्थ के पक्ष में बोलते थे। परन्तु अब नहीं बोलते हैं। हमारे सामने सत्तर-अस्सी साल का अनुभव हो गया है, अब यही मालूम पड़ता है कि मैंने कुछ नहीं किया, वह तो अपने-आप हुआ।

हाँ, जब हम चौबीस-पच्चीस साल के जवान थे, तब इसी तरह सोचते थे। पर आज लगता है कि वह सोचना भी नियत था। उस नियति में कर्म भी आता है और पुरुषार्थ, स्वेच्छा, अहंकार तथा धैर्य भी आता है। परन्तु नियम के अनुसार। नियम का मतलब एक विधान है, एक कानून है, जिसके मुताबिक चलना होगा, जिसके मुताबिक कर्म होगा, स्वेच्छा होगी, जिसके मुताबिक रावण होगा, राम होगा, कंस होगा, कृष्ण होगा, यह लड़ाई होगी, वह लड़ाई होगी, तुम यह इच्छा करोगे, वह दूसरी इच्छा करेगा, इसको सुख होगा, उसको दुःख होगा। यह सब भगवान की

लीला है। यही सोचकर चलना चाहिए आदमी को। चाहे तुम कुछ भी बनो जिन्दगी में, कुछ भी पाओ, कुछ भी दो, कुछ भी हासिल करो, सब नियत है। सुख नियत है, दु:ख नियत है। प्राप्ति नियत है, अप्राप्ति नियत है। यह सारी सृष्टि नियम पर चलती है। इस सृष्टि के नियम को न मानना संभव नहीं। तुम भी नियम पर चलते हो, मैं भी नियम पर चलता हूँ।

एक नियम वह भी तो है जिसके अनुसार कर्म के अच्छे और बुरे फल मिलते हैं। लेकिन यदि कर्म हमारी स्वेच्छा पर निर्भर नहीं है, तो उसका जो फल होगा वह भी हमारी स्वेच्छा पर नहीं है, पहले से नियत है। फिर क्या प्रयोजन हुआ उस नियम का जो कर्म के अनुसार फल निर्धारित करता है?

तुम्हारी जो इच्छाशक्ति है, स्वेच्छा है, उसको कोई नकार नहीं रहा है। परन्तु स्वेच्छा भी नियम के अन्तर्गत है। तुम दफ्तर जाने के लिए स्वतंत्र हो, पर दफ्तर के नियम-कानून के दायरे में, और जिस दिन तुम नौकरी से सेवा-निवृत्त हो जाओगे, वहाँ नहीं जा सकोगे। कर्म के भी नियम होते हैं। कर्म का फल भी नियत होता है। आम के पेड़ से आम का फल निकला, नियत है। और आम किसने लगाया, वह भी नियत है।

तुमको नियति के परिप्रेक्ष्य में ही सब चीजों को समझना पड़ेगा। तब आसानी से सब प्रश्नों का समाधान मिल जाएगा। यह विचार कि 'मैं स्वतंत्र हूँ, सब कुछ कर सकता हूँ', सच नहीं है। भगवान भी, सृष्टि का स्रष्टा भी सृष्टि के नियम के अधीन है। *ऋतं च सत्यं च*–वेद कहता है, ऋत और सत्य दो नियम हैं और इन दो नियमों के आधार पर अखण्ड, अनंत ब्रह्माण्ड का जो मूल तत्त्व है, वह उसको चलाता है।

आश्रम जीवन का उद्देश्य

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती प्रणीत 'योग प्रदीप-5' से उद्धृत

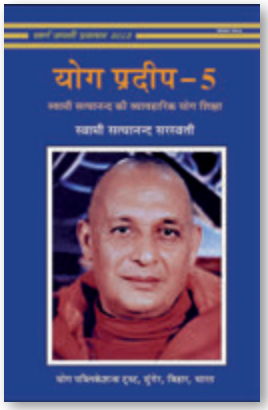

योग आज सम्पूर्ण विश्व में फैल गया है। प्रत्येक महाद्वीप में, प्रत्येक देश में, हर जगह आश्रम खुल गये हैं। दक्षिण अमेरिका में कई आश्रम हो गये हैं। उनका मुख्यालय कोलम्बिया में है। उत्तरी अमेरिका में भी कई आश्रम हैं जिनका मुख्यालय सैन्फ्रांसिस्को में है। ब्रिटेन में भी कई आश्रम चल रहें हैं जिनका मुख्यालय लंदन में है। यूरोप में फ्राँस, हॉलैण्ड, बेल्जियम, नॉर्वे, स्वीडन, डेनमार्क, फिनलैण्ड, स्पेन, इटली, ग्रीस, जर्मनी और स्विट्ज़रलैण्ड में समृद्ध और प्रगतिशील आश्रम हैं। चेकोस्लोवाकिया, पोलैण्ड, रोमानिया, बुल्गारिया, हंगरी और रूस के भीतर भी योग आन्दोलन की गूंज सुनाई पड़ती है। युगोस्लाविया में योग आन्दोलन प्रगति पर है। वहाँ के सामान्य कामगारों, वैज्ञानिकों और चिकित्सकों के उत्साह और उत्कण्ठा की आप कल्पना नहीं कर सकते।

भारत, नेपाल, सिंगापुर, जापान, हाँगकाँग और ऑस्ट्रेलिया में आश्रमों की भरमार है। सिर्फ ऑस्ट्रेलिया में छब्बीस से अधिक आश्रम हैं। इस क्षेत्र में फीजी और न्यूजीलैण्ड भी आते हैं। ऑस्ट्रेलियाई आश्रमों का मुख्यालय मैंग्रोव माउन्टेन है। भारत और नेपाल स्थित आश्रमों का नियंत्रण सीधे योग विद्यालय, मुंगेर से होता है।

कठोर परिश्रम

इस प्रकार विश्व भर में आश्रमों का जाल बिछा हुआ है। आश्रमों के अतिरिक्त सम्पूर्ण विश्व में योग विद्यालय भी खुले हुए हैं जहाँ हमारे शिष्य और भक्त निजी तौर पर योग प्रशिक्षण देते हैं। योग विद्यालयों से आश्रम भिन्न होते हैं। 'आश्रम' शब्द में भौतिक, बौद्धिक, मानसिक और भावनात्मक भावों की अभिव्यक्ति निहित है जो अन्य किसी शब्द में नहीं है।

आपके घरेलू वातावरण से आश्रम की जीवनशैली और वातावरण पूर्णत: भिन्न है। आश्रमों को साधकों के लिए सादा जीवन व्यतीत करने और कठोर श्रम करने हेतु वातावरण तैयार करना चाहिए और उस प्रकार की सुविधायें जुटानी चाहिए। पूर्व की आरामदायक जीवनशैली से आश्रम की जीवन-पद्धति अधिक कार्यव्यस्त और श्रमशील होनी चाहिए।

आश्रम संस्कृत शब्द है। श्रम का अर्थ है प्रयत्न, परिश्रम, चेष्टा। जो व्यक्ति मेहनत से काम कर रहा है वह श्रम कर रहा है। भौतिक स्तर पर रसोई में, उद्यान में, भवन-निर्माण में, साफ-सफाई में कठिन श्रम करना आश्रम जीवन का एक पक्ष हुआ।

साथ-साथ कठिन श्रम करने का एक और आयाम है और वह आंतरिक आयाम है—आध्यात्मिक श्रम। आपने अपने लिए एक कठिन मार्ग चुना है। यह समतल भूमि नहीं है। आपको पहाड़ों, मैदानों, घाटियों और कई कठिन और दुर्गम भूभागों से गुजरना होगा। आपको अपने व्यक्तित्व के विभिन्न क्षेत्रों से जूझना पड़ेगा और उसके लिए भी कड़ी मेहनत करनी होगी। एकाग्रता साधने में भी अत्यधिक मेहनत करनी पड़ती है। वह भी श्रम है।

ध्यान आंतरिक श्रम है। आश्रम में कर्म योग के रूप में कार्य करना भी श्रम है। इसी कारण मैंने योग संघ, योग अकादमी, योग स्कूल या और कोई नाम नहीं रख कर 'आश्रम' शब्द का प्रयोग किया है। मैं स्पष्ट कर देना चाहता था कि आप यहाँ श्रम करने के लिए आये हैं और श्रम करने के लिए ही आते रहेंगे। हाँ, जितना कठिन श्रम आप करेंगे, आपके शिथिलीकरण और ध्यान की गुणवत्ता उतनी ही अच्छी होगी।

आप यदि आलसी हैं तो आपके शिथिलीकरण की गुणवत्ता खराब होगी। यदि आप शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक तल पर अधिक परिश्रम कर रहे हैं तो आपके शिथिलीकरण की गुणवत्ता बेहतर होगी। आप हमेशा इस बात को याद रखें। यही कारण है कि हमने सम्पूर्ण विश्व में आश्रमों का जाल बिछा दिया है।

एक नए जीवन की शुरुआत

प्रत्येक व्यक्ति को यह समझ होनी चाहिए कि साल में कुछ समय आश्रम में व्यतीत करना है और अपनी शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक ऊर्जा की अभिव्यक्ति कर कुछ चीजों का निर्माण करना है, चाहे वह साग-सब्जी-फल पैदा करना हो या भवनों का निर्माण। आपको सृजन करना है, और सृजन से आपको एक नवीन दृष्टि प्राप्त होगी। कुछ समय बाद आपको लगेगा कि एक नई चीज आपके हाथ लग गई है।

अभी कई लोग सोचते हैं कि चूँकि वे परिवार के साथ हैं, अत: पारिवारिक लगाव होना स्वाभाविक है और लगाव से उत्पन्न परिणामों को भुगतना ही है। आसक्ति, अनासक्ति, प्रेम, घृणा—सब उन्हें झेलना है। आप अपने परिवार के साथ भावनात्मक स्तर पर कई उतार-चढ़ाव से गुजरते हैं और आपको अपनी अनुभूतियों की गुणवत्ता में बदलाव लाने में कठिनाई होती है। जब परिवार और समाज में आपके विरुद्ध घटनाएँ घटित होती हैं तो आप आहत और दु:खी हो जाते हैं। आप किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जाते हैं। आश्रम-प्रवास में आश्रम के लिए कड़ी मेहनत करने एवं चीजों का सृजन करने में आपको अपने निकटजनों और मित्रों के साथ नए प्रकार की अनुभूतियाँ प्राप्त होती हैं। आश्रम कार्य में अपने को तन और मन

से लगायेंगे तो आप कुछ नयी चीज अवश्य प्राप्त करेंगे। दैनिक जीवन से जुड़ी समस्याओं के प्रति आप को एक नयी दृष्टि, एक नयी विचारधारा प्राप्त होगी।

आश्रम और योग विद्यालय में अंतर

जो घटनाएँ पहले आपको बहुत परेशान करती थीं अब आपका कुछ नहीं बिगाड़ेंगी। इसलिए आप लोगों से मैं कहता हूँ कि समय-समय पर आश्रम आते रहिये, भले ही आपने योग शिक्षकों से कई प्रकार के योगाभ्यास सीख लिये हों। आप कह सकते हैं, 'मैंने हठयोग, ध्यान, योग-निद्रा और अन्य प्रकार के योग पहले ही सीख लिये हैं। अब मैं घर पर ही उनका अभ्यास करूँगा। आश्रम मुझे अन्तरात्मा, चेतना के जागरण आदि के बारे में सिखायेगा जो मैं पहले से ही जानता हूँ।'

नहीं, आश्रम का यह उद्देश्य नहीं है। यह योग विद्यालय का उद्देश्य है। आप किसी योग विद्यालय में हठयोग, राजयोग, लययोग या कोई भी अन्य योग सीख सकते हैं, योग के सैद्धान्तिक और व्यावहारिक पक्ष सीख सकते हैं। योग स्कूल आपको योग का शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त करा सकता है, किन्तु आश्रम आपको वह प्रशिक्षण देगा जो आपके व्यक्तित्व के गहनतर तलों को प्रभावित कर सके।

संस्कारों का आगार

आपके व्यक्तित्व के गहनतर स्तरों का संबंध आपके अचेतन मन से है जिसकी जानकारी आपको नहीं है। जब आप किसी सुन्दर फूल को देखते हैं तो आप उसे जानते हैं, उसे समझते हैं और उसकी अनुभूति प्राप्त करते हैं। आप अपने मन पर पड़ने वाले प्रभावों की प्रक्रिया से पूरी तरह अवगत हैं। लेकिन बहुत-सी वस्तुएँ ऐसी हैं जो आपके जीवन को प्रभावित कर रही हैं, पर आप उनके बारे में अवगत नहीं हैं।

ये प्रभाव चेतन मन को स्पर्श नहीं करते, सीधे अचेतन मन में प्रवेश कर जाते हैं। कभी-कभी ये संस्कार अवचेतन मन को छूते हुए अचेतन में प्रवेश करते हैं, पर चेतन से होकर कभी नहीं। यह बात निश्चित है कि प्रत्येक अनुभूति जो चेतन मन को स्पर्श करती है, अवचेतन मन में भेज दी जाती है और अंतत: अचेतन में जाकर विश्राम पाती है। प्रत्येक अनुभूति का एक आकार होता है।

एक फूल को देखें, बादलों, वृक्षों, अच्छी-बुरी चीजों को देखें। ये मन में तरंगें पैदा करती हैं। ये आपके मन और बुद्धि से जुड़ी हैं और इसीलिए प्रभाव उत्पन्न करती हैं। उस प्रभाव को संस्कार कहते हैं, वही बीज है। जैसे आम, धनिया, गेहूँ या चावल के बीज होते हैं, उसी तरह जीवन का प्रत्येक अनुभव बीज रूप में अचेतन मन में स्थापित हो जाता है। उसी को संस्कार कहते हैं।

ये संस्कार आजीवन प्रवाहित होते रहते हैं और इसीलिए आप कहते हैं कि मानव मन और चेतना बड़ी उलझनपूर्ण है। आपके मन के भीतर एक वीडियो कैमरा

है जो माँ के गर्भ में आपके प्रवेश के साथ ही चालू कर दिया जाता है और वह आपके चिता में प्रवेश करने तक चलता रहता है। आपके जीवन में घटित होने वाली प्रत्येक घटना की रेकार्डिंग अनवरत होती रहती है। कुछ छूटता नहीं है।

प्रत्येक चीज अचेतन मन में दबी पड़ी है, पर भिन्न-भिन्न तलों पर। कुछ संस्कार आपके मन, परिस्थितियों और घटनाओं के द्वारा आरोपित हैं। आत्मविश्लेषण, मनोविश्लेषण, बौद्धिक विश्लेषण और धार्मिक विश्लेषण द्वारा आप उन प्रभावों और संस्कारों को मिटा सकते हैं। किन्तु ऐसे संस्कार भी हैं जो विश्लेषण अथवा विवेक से भी मिटाए नहीं जा सकते।

आप उन्हें समझ सकते हैं, पर मिटा नहीं सकते, क्योंकि प्रत्येक अनुभूति आपके मन की विविध परतों से गुजर कर आखिर में अचेतन मन में पहुँचकर दब जाती है। यह अचेतन मन कर्मों का भण्डारगृह है। कर्म के इस भण्डार-गृह में अरबों-खरबों संस्कार दबे पड़े हैं। जैसे कम्प्यूटर में डाटा स्टोर होता है, उसी भाँति अचेतन मन में भी स्टोरेज की व्यवस्था है।

आपके अचेतन मन में एक फ्लॉपी डिस्क है, एक अति सूक्ष्म फ्लॉपी डिस्क और वह निराकार है। उसकी वही विशिष्टता है, उसका कोई आकार नहीं, वजन नहीं, कोई आयाम नहीं। वह वहाँ मौजूद है और सपने में बाहर आता है, असंतुलन के क्षणों में बाहर आता है, भावनाओं के आवेश में बाहर आता है और ध्यान के दौरान बाहर निकलता है। जब आप क्रोध करते हैं, हिंसक रूप धारण करते हैं, करुणा से विगलित होते हैं, परम शान्त होते हैं, तब वह प्रकट होता है।

ये अरबों-खरबों संस्कार जो आपकी चेतना में दबे पड़े हैं, बिल्कुल आकार रहित हैं, किन्तु प्रत्येक बीज दूसरे बीज से भिन्न है और प्रत्येक बीज का आपके जीवन की अनुभूतियों से सीधा सम्बन्ध है। हम लोग एक या दो घटनाओं की ही अनुभूति नहीं प्राप्त करते, बल्कि प्रतिदिन हजारों-हजार अनुभूतियाँ हमारी चेतना से गुजरती हैं। क्या आप इसकी कल्पना कर सकते हैं?

जन्म से लेकर आज तक जिन-जिन अनुभवों से हम गुजरे हैं, सब वहाँ अभिलिखित हैं। वह मिटा नहीं है, नष्ट नहीं हुआ है। वह कभी-कभी यादों और स्मृतियों के रूप में उभरता है। वह आता कहाँ से है? वह तो वहाँ था ही, केवल हम

लोग उसे बाहर निकालने में सक्षम हुए हैं। वे सभी संस्कार जो हम दिन-रात जाने-अनजाने ग्रहण करते हैं, हमारे व्यक्तित्व के अभिन्न घटक हैं। हम उसी का समन्वित रूप हैं। आप सिर्फ यह शरीर नहीं हैं, आप सिर्फ आदतें नहीं हैं, बल्कि इन सबसे कुछ अधिक हैं। मनुष्य का व्यक्तित्व गर्भावस्था से मृत्युपर्यन्त प्राप्त अनुभूतियों का समग्र रूप है। संभव है, गर्भ से पूर्व और मृत्यु के बाद की अनुभूतियाँ भी इसमें मिली हुई हों। आप इन अनुभूतियों को उनकी समग्रता में कैसे जी रहे हैं? आप इनके साथ कैसे निबटेंगे?

इसी उद्देश्य से मैं वर्षों के चिन्तन के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि आश्रम जीवन से हमारे व्यक्तित्व और हमारी अनुभूतियों के ज्ञात और अज्ञात क्षेत्रों का प्रबंधन किया जा सकता है। इसलिए जब भी अवसर हाथ आये आप एक सप्ताह, एक माह, एक वर्ष या जीवन भर के लिए आश्रम आ जायें। कितने दिन के लिए आयें, यह आपकी परिस्थिति पर निर्भर है। जब आश्रम में रहने आयें तो आप अपना सिर मुड़ा लें और गेरु वस्त्र धारण कर लें। जब भी आप चाहें, आप नये सिरे से यह जीवन शुरू कर सकते हैं। आप निश्चित रूप से लोगों के साथ अपने सम्बन्धों में बदलाव पायेंगे।

हम सभी एक हैं

एक छोटी-सी बोधकथा के साथ मैं अपनी बात समाप्त करूँगा। एक किसान की पत्नी मर गयी। उसने पुरोहित को बुलाकर अपनी पत्नी के स्वर्ग में कल्याण हेतु मंत्रपाठ करने का अनुरोध किया। पुरोहित ने प्रार्थना आंरभ की। किसान ने पूछा, 'आप मेरी पत्नी के लिए प्रार्थना कर रहे हैं?' पुरोहित ने उत्तर दिया, 'मैं उनके लिए और साथ ही सभी सजीव और निर्जीव प्राणियों के लिए प्रार्थना कर रहा हूँ।' किसान ने कहा, 'मैंने तो सिर्फ अपनी पत्नी के लिए अनुरोध किया था। आप सबके लिए क्यों प्रार्थना कर रहे हैं?'

तब पुरोहित ने समझाया, 'यह मेरा धर्म है, मेरा कर्त्तव्य है कि मैं सभी जीवित और मृत प्राणियों के लिए प्रार्थना करूँ। आपकी पत्नी भी उनमें से एक है।' किसान ने कहा, 'कृपया एक अपवाद कीजिए। मेरे पड़ोसी के लिए प्रार्थना मत कीजिए, क्योंकि वह दुष्ट है। यदि आप सभी जीवित और मृत प्राणियों के लिए प्रार्थना करते हैं तो उसमें मेरा पड़ोसी भी शामिल हो जायेगा जो मैं नहीं चाहता हूँ।'

हर आदमी इसी प्रकार का दृष्टिकोण अपनाकर जीवन जीता है, किन्तु हम लोगों को इससे भिन्न होना है, क्योंकि सम्पूर्ण विश्व आपस में जुड़ा है, एक सूत्र में बँधा हुआ है और वह सूत्र मुझमें, आप में और हर व्यक्ति में मौजूद है। इसी की अनुभूति के लिए हम लोग इस आश्रम में रहने के लिए आये हैं। जब हमें समग्रता की एक झलक मिल जायेगी तो हम जीवन के प्रति एक नई दृष्टि प्राप्त करने में सक्षम होंगे जो कठिन-से-कठिन समय में हमें मार्गदर्शन प्रदान करेगी।

पूज्य गुरुदेव के चरणों में श्रद्धा सुमन

संन्यासी कृष्णप्रेम, देहरादून

जनवरी 1988 की बात है, जब स्वामी कैवल्यानन्द जी धनबाद में हमारे टाटा स्टील ऑफिसर्स क्लब में दो-तीन दिनों का योग शिविर करने आए थे। उन दिनों मेरी स्थिति बहुत ही खराब थी, मैं बड़े बुरे दौर से गुजर रहा था। नौकरी में परेशानी, आत्म-विश्वास की कमी, मन अशान्त रहता था। परिवार के दायित्व का बोझ आ गया था। कुछ भी ठीक-ठाक नहीं चल रहा था।

स्वामी कैवल्यानन्द जी ने जैसे तुरंत ही मेरी आंतरिक स्थिति भाँप ली थी। उन्होंने मुझे सुझाव दिया कि गुरुजी, श्री स्वामी सत्यानन्द जी के पास मुंगेर जाओ और किसी दिन मंत्र दीक्षा ले लो। गुरुजी ने शायद मेरे लिए ही स्वामीजी को मेरे पास भेजा था। मैंने मुंगेर ऑफिस से पत्राचार किया और शिवरात्रि के एक दिन पहले वहाँ पहुँच गया। फरवरी 1988 में शिवरात्रि के दिन मुझे गुरुजी द्वारा मंत्र दीक्षा मिल गयी और उन्होंने मुझे अपना शिष्य बना लिया।

आज जब मैं पीछे मुड़कर देखता हूँ तो शायद वह शिवरात्रि का दिन मेरे जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण और स्वर्णाक्षरों से लिखा दिन था। उस दिन जैसे मेरे जीवन को एक दिशा मिली, मेरे जीवन में प्रकाश आया। आपको यह जानकर आश्चर्य होगा कि उस दिन के बाद से मेरा जीवन धीरे-धीरे व्यवस्थित होने लगा था। मुझे आध्यात्मिक व भौतिक सुख-सुविधाएँ, परिवार का सुख इत्यादि सब कुछ अच्छे से मिलने लगा था। ऐसी बात नहीं थी कि मेरी सारी परेशानियों या समस्याओं का अन्त हो गया था, परन्तु मुझे ऐसा लगा कि मेरे अन्दर धीरे-धीरे आन्तरिक शक्ति आने लगी थी, जिसकी वजह से शायद मैं सारी परेशानियों और मुसीबतों को बड़ी मजबूती के साथ झेल पा रहा था। जो मेरा प्रारब्ध है वह तो मुझे मिलेगा ही, परन्तु गुरुजी ने अपने मंत्र के माध्यम से मुझे सबल बनाना शुरू कर दिया था।

मुझे गुरुजी से मिला मंत्र दीक्षा रूपी आशीर्वाद, एक थके-माँदे यात्री को मिली ठण्ढी छाँव जैसा लगा। मैं इतना आनन्दित और खुश हुआ कि मैंने सन् 1988 के गुरु पूर्णिमा में दोबारा मुंगेर आकर गुरुजी से कर्म संन्यास की दीक्षा ली। गुरुजी ने मेरा संन्यास नाम कृष्णप्रेम रखा और उसके बाद तो मैं धीरे-धीरे कृष्ण-भक्त ही बनता गया।

मैं अपने आपको बड़ा सौभाग्यशाली समझता हूँ कि मैंने मंत्र दीक्षा और कर्म संन्यास की दीक्षा गुरुजी से ली थी, क्योंकि अगस्त 1988 में उन्होंने सब कुछ

त्याग दिया था और अज्ञातवास में चले गये थे। बाद में फिर रिखिया में प्रकट हुए थे, परन्तु दीक्षा देना बन्द कर दिया था।

वैसे तो कितनी ही छोटी-मोटी घटनाएँ हमारे साथ हुईं, जिनसे ऐसा लगने लगा कि गुरुजी हमारे सारे सुख-दु:ख में हमारे साथ थे और साथ रहेंगे। उन्होंने कितनी परेशानियों और जीवन के उतार-चढ़ावों से हमारा उद्धार किया था। अपने नौकरी पेशा जीवन में मैंने चार बार अपनी नौकरी खोई, परन्तु यह गुरुजी की कृपा और आशीर्वाद ही है कि चारों बार उन्होंने मुझे परेशानियों से बचाया और साथ-ही-साथ दूसरी नौकरी दिलवा दी। देहरादून में अचानक एक सुन्दर घर का बनना, शायद मेरे जीवन में एक चमत्कार से कम नहीं था। जब-जब भी मेरे जीवन में भौतिक कष्ट आए, उनके अदृश्य हाथों ने मुझे कहाँ-कहाँ से मदद पहुँचायी, इसका विवरण नहीं कर सकता हूँ। गुरुजी की कृपा व आशीर्वाद कदम-कदम पर मेरे साथ था और मेरे साथ रहेगा। यह गुरुजी की असीम कृपा है कि मेरे बच्चों व पत्नी को भी जैसे अपने जीवन का लक्ष्य मिल गया है, और मुझे गर्व है कि वे सब अच्छे इन्सान और अच्छे संस्कार वाले बने हैं।

5 दिसम्बर 2009 की रात को मैं अपने देहरादून घर में रोज की तरह ही सो रहा था, परन्तु उस रात मुझे एक सपना-सा आया कि जैसे गुरुदेव मेरे बिस्तर के पास आकर खड़े हुए हैं और मुझे सोते हुए देख रहे हैं। मैंने इस सपने पर इतना गौर नहीं किया क्योंकि मुझे पता नहीं था कि गुरुजी ने समाधि ले ली है। मुझे पाँच-छ: दिनों के बाद यह बात पता चली। शायद गुरुदेव ने समाधि के साथ ही मुझे अपने दर्शन व आशीर्वाद का प्रसाद दिया था, ऐसा मुझे लगता है।

गुरुजी ने हमारे जीवन को एक दिशा दी, वरना हम पूरी तरह भटक जाते और अपना जीवन खराब कर लेते। उन्होंने हमें जीवन का एक लक्ष्य दिया है। हमें धीरे-धीरे इतना मजबूत बनाया कि हम जीवन की सारे परेशानियों को झेल सकें और एक अच्छा इन्सान बन सकें। गुरुजी भले ही भौतिक रूप से हमारे पास नहीं हैं, परन्तु आध्यात्मिक स्तर पर वे अब भी हमारे समीप हैं और उनका आशीर्वाद हमेशा हमें मिल रहा है व मिलता रहेगा। शायद मेरे अन्दर ही कमी है कि मैं गुरुजी के प्रति पूरे तन-मन-धन से अपने कर्तव्य का निर्वाह नहीं कर सका।

अन्त में मेरे पूज्य गुरुदेव, मेरे इष्ट, मेरे भगवान को मेरा शत-शत नमस्कार, प्यार, श्रद्धा और उनके चरणों में मेरी ओर से श्रद्धांजलि व श्रद्धा सुमन।

साधना का सूत्र

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती प्रणीत 'रिखियापीठ सत्संग-3' से उद्धृत

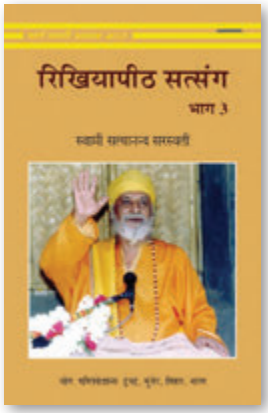

अद्वैत अवस्था, निर्विकल्प समाधि या 'सियाराममय सब जग जानी', यह सब एक जन्म में प्राप्त होने वाली चीजें नहीं हैं। जैसे डॉक्टर बनने में तुम्हें 15-20 साल लगे, सबसे पहले तुमने अक्षर ज्ञान, वर्ण माला, इत्यादि सीखा, फिर स्कूल गए, कॉलेज गए, तब जाकर डॉक्टर बने, वैसे ही किसी को भी एक ही जन्म में परम ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती, वह चाहे तुम हो या हम हों। यह मानकर चलना है कि यह मेरा अंतिम जन्म नहीं है। भले ही यह मेरा अंतिम जन्म हो, मगर यही मानना चाहिए कि यह अंतिम नहीं है।

सन् 1947 में 12 सितम्बर को जब हमने संन्यास लिया, तो स्वामी शिवानन्द जी ने हमें क्रिया योग की शिक्षा दी। जो भी बताना था, वह सब कुछ बताया, किन्तु उन्होंने कहा कि तुम्हें चालीस साल रुकना चाहिए, तुम्हारे कर्म शेष हैं, तुम्हारी इच्छाएँ शेष हैं। और हम ठीक चालीस साल तक रुके। हमने सन् 1988 में आश्रम छोड़ा और यहाँ आ गये। जब तक मनुष्य की इच्छाएँ, वासनाएँ और कर्म शेष रहते हैं, तब तक उसे भक्ति मार्ग में चलना चाहिए। भक्ति मार्ग का मतलब होता है, पूजा, पाठ, जप, सत्संग। योग मार्ग में आसन-प्राणायाम सबके लिए होता है, सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्तेय और अपरिग्रह का अभ्यास अपने वर्ण-आश्रम के मुताबिक करना चाहिए। धारणा, ध्यान, समाधि, ये राजयोग की क्रियाएँ हैं, यह अष्टांग योग है जिसका अभ्यास भक्ति योग के बाद ही किया जाता है। तुम मूल शास्त्रों को पढ़ो, योग का अभ्यास कब शुरू होता है? महर्षि पतंजलि के योग सूत्रों में लिखा है न, *अथ योगानुशासनम्*। यहाँ अथ शब्द का मतलब है, अब इसलिए। तुमने बी.ए. पास कर लिया है, इसलिए अब तुम अगली कक्षा में जाओ, एम.ए. करो। अब तुमने भक्ति योग का अभ्यास कर लिया है, इसलिए अब तुम्हें राज योग का अनुशासन बताते हैं।

सब सूत्रों में ऐसा ही लिखा है। ब्रह्म सूत्र का पहला सूत्र है, *अथ अतो ब्रह्मजिज्ञासा,* अब हम ब्रह्म के ज्ञान की जिज्ञासा करते हैं। 'अब हम' माने तुमने भक्ति योग का अभ्यास भी किया, तुमने राज योग की साधना भी की, अब तुम वेदान्त का अध्ययन और अभ्यास करो। यह जो अभ्यास शास्त्र है हम लोगों के वैदिक धर्म में, जिसे तुम योग कहो, ज्ञान कहो या वेदान्त कहो, यह एक जन्म का नहीं है। इस अवस्था

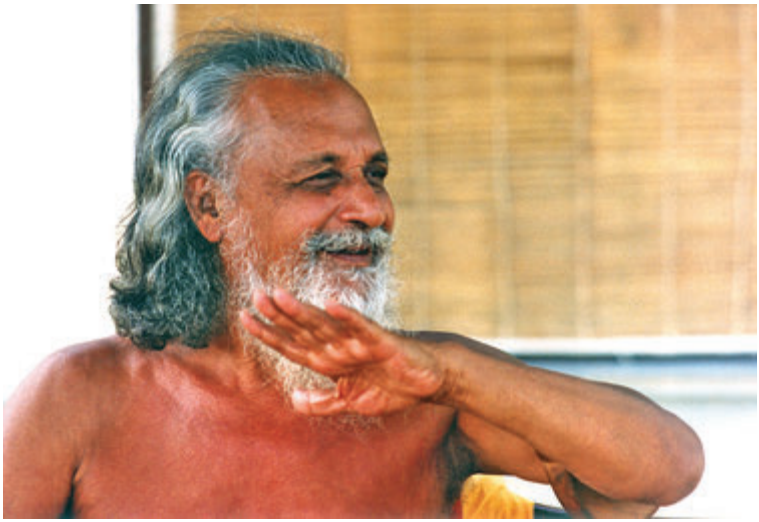

को पाने के लिए ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य अवस्था में, गृहस्थ गृहस्थाश्रम में और संन्यासी संन्यास अवस्था में साधना करे। जब संन्यासी गुरु से दीक्षा लेकर गुरु के आश्रम में झाड़ू देता है, रसोई बनाता है, बैंकिंग करता है, टाईपिंग करता है, एकाउंटिंग करता है, भवन-निर्माण करता है, तब उसने वही काम किया, जो आप गृहस्थ लोग संसार में करते हैं। उसी तरह से गृहस्थ आश्रम में रह कर संन्यासी का कर्म करना चाहिए। इसे कहते हैं एकीकरण। जब हमने गुरुजी से दीक्षा ली, तो क्या किया? बैठ गये क्या? नहीं। गुरुजी का आश्रम बनाया, उनका पैसा सम्भाला, उनका रसोई घर सम्भाला, गाय के लिए घास काटी, बैल चराये, गाड़ी चलाई, दूध निकाला। बारह साल तक उनका काम किया। फिर अपना आश्रम बनाया तो अपने आश्रम में काम किया। संन्यासी, संन्यास आश्रम में गृहस्थ आश्रम की तरह रहे। उसी तरह गृहस्थ को गृहस्थाश्रम में रह कर संन्यास आश्रम के धर्म का पालन करना चाहिए।

संन्यास धर्म क्या है? गेरू कपड़ा पहनना, सिर मुड़ाना, माला पहनना, यह संन्यास धर्म नहीं, यह तो संन्यास सम्प्रदाय है। सम्प्रदाय और धर्म में अन्तर होता है। संन्यास का मतलब क्या होता है, और गृहस्थ का अर्थ क्या होता है? जब गृहस्थ और संन्यास आश्रम को मिलाया जाता है, तब खिचड़ी बनती है जो सुपाच्य होती है। गीता ने इसे स्पष्ट किया है। भगवान श्रीकृष्ण गीता में अर्जुन से कहते हैं, *ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी।* नित्य का मतलब क्या होता है? जो न सिर्फ दिन को या रात को, बल्कि सदा रहता है। संन्यासी किसे कहते हैं? श्री कृष्ण कहते हैं, हे अर्जुन, काम करना तेरे बस में है, बगीचा लगाना तेरे बस में है, शादी करना तेरे बस में है, दुकान खोलना तेरे बस में है, मगर तुमने बगीचा लगाया तो फल निकलेगा ही,

यह तेरे बस में नहीं है। शादी की है तो बच्चा होगा ही, यह तेरे बस में नहीं है। दुकान खोली तो लाखों-करोड़ों बनेंगे, यह तेरे बस में नहीं है। अर्जुन कर्म करना तेरे बस में है, इतना अधिकार है तुम्हें, मगर इससे उत्पन्न होने वाले परिणाम तेरे अधिकार क्षेत्र से बाहर हैं।

यह है गृहस्थ और संन्यास धर्म का योग। केवल गृहस्थ धर्म क्या है? बगीचा लगाओ और दिनभर बोलो फल चाहिए, पैसा चाहिए, नहीं मिले तो सर पटको। आशाओं को लेकर जीवन व्यतीत करना, और आशाओं की पूर्ति न होने पर निराश हो जाना, दिल का टूट जाना, यही तो गृहस्थ आश्रम है। कर्म करना और फल की चाह रखना, यही विशुद्ध गृहस्थ आश्रम है। जबकि कर्म नहीं करना, और फल की चाह भी न होना, यह विशुद्ध संन्यास आश्रम है। इन दोनों का योग यह हुआ कि कर्म करो गृहस्थ की तरह और फल की आशा न रखो संन्यासी की तरह। जो होगा देखेंगे, मिलेगा तो बढ़िया, नहीं मिलेगा तो चलेगा। यही गीता का बीज मंत्र है–

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा तेऽसंगोस्त्वकर्मणि॥2.47॥

हे अर्जुन, तुम संन्यासी की तरह कर्म का त्याग नहीं करना और गृहस्थ की तरह फल के पीछे भी न पड़े रहना। फल के पीछे पड़ जाओगे तो पतन ही होगा। किसी को हृदय की बीमारी हो रही है, किसी को तनाव हो रहा है, किसी को रक्तचाप हो रहा है, सब पागलपन है। साधना के बारे में कभी गलती नहीं करना। तुम कितनी भी साधना करो, दिन-रात साधना करो, भांग चढ़ाकर साधना करो, अफीम पीकर साधना करो, कुण्डलिनी जगाने की साधना करो, मगर *'समय पाय तरुवर फले, केतिक सींचो नीर।'* साधना धीरे-धीरे होती है, इसमें धैर्य और नियंत्रण की जरूरत पड़ती है।

गृहस्थ आश्रम अपने आप में एक बहुत बड़ी साधना है। बाप ने लड़के को पढ़ाया-लिखाया और पढ़-लिखकर लड़का बाप को जवाब देता है। अब क्या करें, दो-चार थप्पड़ मारें या सहन करें। सहन करना ही अच्छा है। यह सहनशीलता की शिक्षा हो गई। पति-पत्नी, जन्म-जन्म के साथी, उनके बीच दिनभर नोंक-झोंक चलती है, क्या करें जी, समझें या न समझें? समझना ही पड़ता है। गृहस्थ आश्रम में क्षमा, सहनशीलता और तितिक्षा जैसे बहुत-से मजबूत बनाने वाले सद्गुणों का उपार्जन होता है। इन्द्रियों का दमन भी तो गृहस्थ आश्रम में करना पड़ता है। बाल-बच्चे हुए तो पैसा बचाना है, चलो थोड़ा-सा कम खर्च करें। नहीं होता है क्या?

गृहस्थ आश्रम में साधक उन्हीं गुणों का उपार्जन करता है जो आगे जाकर साधना के मार्ग में विघ्नों को दूर करते हैं। बिना सद्गुणों का उपार्जन किये, बिना व्यक्तित्व का परिष्कार किये यदि तुम ध्यान करोगे तो सीधे राँची के पागलखाने पहुँच जाओगे। साधक को बहुत मजबूत होना पड़ता है, उसका दिमाग बहुत मजबूत

होना चाहिए। किसका दिमाग मजबूत होता है? जो आदमी क्षमा करना जानता है, सच में उसका दिमाग मजबूत है। जब तक तुम्हारा दिल और दिमाग मजबूत नहीं होगा, तुम दूसरे को क्षमा करोगे क्या? कमजोर आदमी क्षमा कर सकता है क्या, सहन कर सकता है क्या, दया कर सकता है क्या?

क्षमा सोहती उस भुजंग को जिसके पास गरल है।
उसको क्या जो दन्तहीन, विषरहित विनीत सरल है॥

दया और करुणा किसके अन्दर होती है? बच्चे का कौन माँ त्याग कर सकती है, कमजोर माँ या मजबूत माँ? त्याग, तितिक्षा, दया और क्षमा जैसे गुणों का उपार्जन साधना के पहले निश्चित रूप से करना चाहिए।

ध्यान का जोखिम कभी नहीं लेना। गुरु के बिना तो बिल्कुल ही नहीं लेना। साधना मनमुख नहीं होती, गुरुमुख होती है। गुरु की जरूरत सब जगह है। यदि कोई चोरी-डकैती करना चाहता है तो उसे भी गुरु की जरूरत पड़ती है। बिना गुरु के विद्या सफल नहीं होती। यह बात हमेशा ध्यान रखने की है। दूसरी बात यह है कि ईश्वर को पाने की जल्दी किसी को नहीं करनी चाहिए। यह *'चट मंगनी, पट विवाह'* की तरह नहीं होता। ईश्वर इतना सूक्ष्म तत्त्व है कि ऋषि-मुनियों ने इसके बारे में अन्तिम वाक्य 'नेति, नेति' कहा है। नेति माने पता नहीं चला। जब ऋषि-मुनियों को भगवान के अनन्त स्वरूप का पता नहीं चला, तब उन्हें अहसास हुआ कि भगवान का साकार रूप भी हो सकता है। भगवान सिर्फ निराकार नहीं है। वह निराकार भी है और साकार भी। वह सर्वाकार है। पानी बर्फ भी बनता है और पानी भी रहता है। जब उनको यह तथ्य पता लगा तब उन्होंने साकार उपासना शुरू की।

गृहस्थ और संन्यासी, दोनों को साकार उपासना करनी चाहिए। आदिशंकराचार्य तो अद्वैतवाद के प्रतिपादक थे, फिर भी उन्होंने देवी जी, शिव जी और विष्णु जी के कितने स्तोत्र लिखे हैं। अन्नपूर्णा स्तोत्र भी तो उन्हीं की रचना है न? आखिर उन्होंने साकार उपासना क्यों की? उन्होंने शृंगेरी मठ में माँ शारदा को क्यों प्रतिष्ठित किया? शारदा के विग्रह के बदले निराकार लिंगम् रख देते। पर नहीं, उन्होंने ऐसा नहीं किया।

भगवान का साकार रूप दुर्लभ है, क्योंकि समझ में ही नहीं आता कि साकार भगवान कैसे हैं? जबकि भगवान का निराकार रूप सुलभ है, क्योंकि निराकार कहते ही झट से समझ में आ जाता है। उसे सब स्वीकार कर लेंगे, कोई भी 'न' नहीं कहेगा, न मुसलमान, न ईसाई, न पारसी, न यहूदी। लेकिन साकार की बात कहोगे तो लोग बहुत-से सवाल खड़े करेंगे। भगवान राम कैसे थे, कृष्ण जी कैसे थे, क्या रामकृष्ण परमहंस सचमुच भगवान के अवतार थे? इसलिए साकार बहुत ही दुर्लभ है। पर एक बार तुम्हारी मति साकार भगवान में निश्चित हो गई, तो तुम्हारा रास्ता साफ हो गया। समझो कि नैशनल हाइवे पर गाड़ी आ गई, अब पूरी रफ्तार से चलाओ।

ध्यान की ऊँची अवस्था और पागलपन, दोनों के लक्षण समान होते हैं। हमने बहुत-से महात्माओं को देखा है, अनुभूति जाग्रत होने के बाद वे सामान्य स्तर पर नहीं आ पाते। अगर तुम्हें गृहस्थ आश्रम में पत्नी के रूप में, पति के रूप में, पुत्र के रूप में, पुत्री के रूप में, अफसर के रूप में या कॉलेज के प्रोफेसर के रूप में काम करना है, तो फिर तुममें एक सामान्य व्यक्ति की तरह जीने की क्षमता होनी चाहिए।

हमारे गुरुजी ने जब कहा कि चालीस साल रुको, तो हमने कहा कि चालीस साल के बाद ही क्यों, अभी क्यों नहीं? उन्होंने कहा कि तुम गाड़ी छूटने के तीन घण्टे पहले स्टेशन आ गए हो। गाड़ी तो अभी आई नहीं है, तब तीन घण्टे क्या करोगे? हमने कहा कि हम उस बीच घर जाकर वापस आते हैं। उन्होंने कहा कि यदि उस बीच गाड़ी आ गई और छूट गई तो?

उन्होंने मुझसे कहा कि तब तक तुम यहीं रहो। घर जाकर तुम्हें जो करना है, वह सब तुम यहीं पर रहकर करो। फिर उन्होंने मुझे गोशाला खोलने के लिये कहा। ऋषिकेश में जो कोढ़ी सड़क पर बैठकर भीख माँगते थे, उन लोगों के लिए कॉलोनी बनाने के लिये कहा। मैंने सरकार और स्थानीय लोगों से दस-बारह एकड़ जमीन ली। उस समय गाँधी जी की सहयोगी, मीराबेन भी वहीं रहती थीं। उनका बहुत बड़ा फार्म था। उनसे कुछ खर-फूस वगैरह लिया और कोढ़ियों के लिए घर बना दिये। उनको बकरी भी दी, बीड़ी भी दी, भत्ता भी दिया। शाम को वहाँ जाकर उन्हें रामचरितमानस भी पढ़ाता था। उनकी मलहम-पट्टी, दवा-दारू सब कुछ करता था।

वह काम खत्म हुआ तो उत्तर गुजरात भेज दिया गया। वहाँ आँखों के लिये शिविर लगाते थे। उन दिनों मोतियाबिंद के रोज डेढ-दो सौ ऑपरेशन होते थे। 1947 में मैं पाकिस्तान में था। लाहौर में पत्रिका छपती थी, मैं वहाँ स्थानीय संपादक था। 14 अगस्त को मैं वहीं था। और वहीं फँस गया। मुझे मालूम था कि यह सब होने वाला है। मैंने आश्रम चिट्ठी लिखी, पर चिट्ठी का जवाब ही नहीं आया। खैर सेना ने मुझे निकाला 17 तारीख को। वहाँ से आया तो बंगलादेश भेज दिया गया। वहाँ राहत शिविर में चार-चार हजार लोगों को खाना खिलाते थे।

कहने का मतलब यह कि गृहस्थ आश्रम में जो काम करना पड़ता है, वही संन्यास आश्रम में किया। स्वामीजी ने कहा था कि बेटा, तुम रेलवे प्लेटफार्म पर तीन घण्टे पहले आ गए हो, अब प्रतीक्षालय में रुको, अखबार पढ़ो, मूँगफली खाओ, इधर-उधर चहलकदमी करो, सिगरेट-बीड़ी पिओ, समय निकल जाएगा। गाड़ी आएगी तो चले जाना। 1987 में मेरी गाड़ी के आने की सूचना आई, हरी झण्डी हो गई। 1988 में मैंने मुंगेर आश्रम छोड़ दिया, और 1989 में यहाँ आ कर जम गया। अब गाड़ी आ गई है, मस्त होकर बैठे हैं उसमें। साधना ऐसे करनी चाहिए। कभी भी गलत साधना मत करो। और बिना गुरु के तो कोई साधना करना ही नहीं।

श्रद्धांजलि

गुरु गोविंद दोनों खड़े

उमा शंकर बालव्यास, सूर्यगढ़ा

आपने मथुरा में अवतार लिया। मेरे गुरु ने अल्मोड़ा में अवतार लिया॥1॥
आप मथुरा से गोकुल गए। मेरे गुरु अल्मोड़ा से ऋषिकेश गए॥2॥
आपने महर्षि संदीपन को गुरु बनाया। मेरे गुरु ने शिवानंद जी को गुरु बनाया॥3॥
आपने अनेक असुरों का नाश किया। मेरे गुरु ने लाखों को ज्ञानप्रकाश दिया॥4॥
आपने माखन की चोरी की। मेरे गुरु ने चित्त की चोरी की॥5॥
आपने वृंदावन में रास रचाया। मेरे गुरु ने ब्रह्म जीव का संग कराया॥6॥
आपने गोकुल के लिये गोवर्धन उठाया। मेरे गुरु ने जगत के लिये आपको उठाया॥7॥
आपने नरावतार अर्जुन को गीताज्ञान सुनाया। मेरे गुरु ने शिवावतार निरंजन को परमहंस बनाया॥8॥
आप अच्युत योगेश्वर कहलाए। मेरे गुरु विदेह-योगीराज कहलाए॥9॥
राधा रानी आपकी आराधिका बनी। माँ धर्मशक्ति गुरुजी की साधिका बनी॥10॥
आप गोकुल वृंदावन छोड़े। मेरे गुरु गंगा दर्शन छोड़े॥11॥
आप द्वारिका पुरी बसाए। मेरे गुरु रिखिया पीठ बसाए॥12॥
आप हैं कण कण में समाए। मेरे गुरु ही इसका बोध कराए॥13॥
मैंने गुरु निरंजन से रहस्य पूछा। उत्तर मिला गुरु-गोविंद एक हैं समझ अच्छा॥14॥
महिमा गुरु अपार जो गोविंद बताया। शिवम् सत्यम् निरंजनम् मम हृदय समाया॥15॥

योग तथा बच्चों की समस्याएँ

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती प्रणीत 'बच्चों के लिए योग शिक्षा-1' से उद्धृत

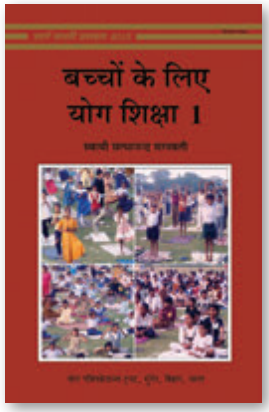

भारत में पारम्परिक रूप से बच्चों को आठ, नौ या दस वर्ष की अवस्था में योगाभ्यास में प्रवृत्त किया जाता है। वैदिक परम्परा में एक अनुष्ठान होता है जिसके अंतर्गत इस अवस्था के बच्चों को सूर्य नमस्कार, नाड़ी शोधन प्राणायाम और गायत्री मंत्र सिखाया जाता है। आज भी यह परम्परा कहीं-कहीं कायम है, लेकिन साथ ही योग को औपचारिक शिक्षा प्रणाली में भी सम्मिलित किया जाना चाहिए। बच्चों की अनेक समस्याएँ अस्पष्ट एवं अनभिव्यक्त होती हैं। वे अपनी समस्याओं को सही ढंग से व्यक्त नहीं कर पाते हैं, क्योंकि उनमें अभिव्यक्ति की क्षमता और स्वयं अपने मनोविज्ञान के विषय में जानकारी का अभाव होता है। इसलिए बच्चे प्राय: अपने आचरण के माध्यम से अपनी समस्याओं को प्रकट करते हैं। जब तक कोई मनोविश्लेषक बच्चों के आचरण का अध्ययन नहीं करेगा तब तक वह सही निदान भी नहीं दे पायेगा।

ऐसी समस्याएँ अधिकतर माता-पिता को कठिनाई में डाल देती हैं, क्योंकि वे मनोविश्लेषक तो होते नहीं और वे अपने बच्चों की समस्याओं को अपने नजरिये से देखते हैं। उदाहरण के लिए, यदि कोई बच्चा धृष्ट और अवज्ञाकारी है तो माता-पिता बिना इसके कारण की गहराई में गये उस पर 'अवज्ञाकारी' होने का ठप्पा लगा देंगे। यदि बच्चा घर में नहीं रहना चाहता है और अपने मित्रों की, चाहे अच्छे हों या बुरे, संगति में ही रहना चाहता है, तो माता-पिता उसे आवारा मान लेंगे। एक मनोचिकित्सक इस आचरण के कारण का विश्लेषण करने का प्रयास करेगा, लेकिन माता-पिता यह नहीं कर सकते। ऐसा नहीं कि वे विश्लेषण करना नहीं जानते हैं, बल्कि इसलिए कि वे माता-पिता हैं और पूर्वाग्रहों से भरे हुए हैं।

बच्चों में सात से बारह वर्ष की अवस्था के बीच कुछ प्रवृत्तियों में असंतुलन आ जाता है। शारीरिक विकास एवं मानसिक विकास साथ-साथ नहीं हो पाते हैं। मस्तिष्क, नाड़ी संस्थान एवं अंत:स्रावी ग्रंथियों की दृष्टि से देखा जाए तो कभी-कभी शारीरिक विकास मानसिक विकास से कहीं अधिक हो जाता है या अनेक बार मानसिक विकास शारीरिक विकास से बहुत अधिक हो जाता है। बच्चों में समस्याओं का यह मौलिक कारण होता है।

हम लोगों को बच्चों की समस्याओं का विश्लेषण नैतिकता एवं सदाचार के आधार पर नहीं करना चाहिए। उदाहरण के तौर पर यदि एड्रिनल ग्रंथि से अत्यधिक स्राव हो रहा हो तो बच्चा भयभीत रहेगा। वह कठिन परिस्थितियों और व्यक्तियों का सामना नहीं कर पायेगा। यदि उसके विद्यालय में कोई कठोर शिक्षक हैं, तो वह न तो उनका सामना करना चाहेगा और न ही उनके विषय को पढ़ना चाहेगा। इस समस्या का कारण न नैतिक है, न सदाचार सम्बन्धी है और न ही सामाजिक है, यह मनोकायिक है। हमें बच्चे के चरित्र में बदलाव लाने के लिए केवल एड्रिनल ग्रंथि के स्राव को संतुलित कर देना होगा। जो लोग बच्चों की समस्याओं का समाधान करना चाहते हैं, उन्हें हॉर्मोनों के भावनात्मक प्रभाव का अध्ययन करना चाहिए। इसी प्रकार की समस्या थायरॉयड हॉर्मोनों में असंतुलन के कारण होती है।

सात-आठ वर्ष की अवस्था में शीर्ष ग्रंथि का क्षय होने लगता है और जब क्षय की प्रक्रिया एक विशेष स्तर तक आगे बढ़ जाती है, तब शरीर में यौन हॉर्मोन क्रियाशील हो जाते हैं। इसके पहले तक शीर्ष ग्रंथि बच्चे की यौन-सजगता और उससे संबद्ध भावनात्मक और मानसिक चरित्र के तीव्र विकास को रोके रखती है। जिस क्षण शीर्ष ग्रंथि का क्षय पूरा हो जाता है, बच्चे का भावनात्मक विकास तीव्र हो जाता है जिसे सम्भालना उसके लिए कठिन हो जाता है। यदि हम शारीरिक विकास की तुलना में भावनात्मक विकास को धीमा कर दें, तो बच्चे में स्थिरता आ जायेगी। ऐसा करने के लिए शीर्ष ग्रंथि को स्वस्थ रखना होगा और इसके लिए शाम्भवी मुद्रा (भ्रूमध्य पर आँखों की एकाग्रता) का अभ्यास आवश्यक है।

शीर्ष ग्रंथि का बहुत महत्त्व है। योग में इसे आज्ञा चक्र कहते हैं, जो मस्तिष्क में मेड्युला ऑब्लाँगेटा नाड़ी के शीर्ष पर स्थित है। शीर्ष ग्रंथि बहुत छोटी होती है और ताले जैसा काम करती है। जब तक शीर्ष ग्रथि स्वस्थ रहती है, तब तक अराजकतापूर्ण यौन आचरण नहीं होता है। यौन-सजगता का विकास तब होना चाहिए जब बच्चा उसकी मानसिक प्रतिक्रिया को संतुलित रखने योग्य हो जाए। यदि बच्चे में यौन कल्पनाएँ विकसित हो जाएँ और वह उन्हें अभिव्यक्त करने में असमर्थ हो, तो यह उसके लिए बहुत घातक होगा। उसे डरावने और भ्रमित करने वाले स्वप्न आयेंगे और वह अपने दैनिक जीवन में अपनी उस सजगता से उबरने का प्रयास करेगा। इस प्रयास में वह ऐसे आचरण करेगा जिसे लोग पसंद नहीं करेंगे। समय से पहले यौन-सजगता की परिपक्वता बच्चे के मन पर आघात कर सकती है। उदाहरण के लिए, बालिकाओं में जब यौन हॉर्मोन का स्राव होने लगता है, तो स्तन ग्रंथियाँ, डिंबाशय और गर्भाशय, सभी एक साथ सक्रिय हो जाते हैं। अब यदि शीर्ष ग्रंथि जल्द ही काम करना बंद कर दे, तो यह भ्रमपूर्ण स्थिति गलत समय में उत्पन्न हो जाती है। बालिका बेचैन हो जाती है, क्योंकि इस बदली हुई परिस्थिति से निपटने के लिए वह शारीरिक रूप से तैयार नहीं रहती है।

अत: शाम्भवी मुद्रा के अभ्यास द्वारा आज्ञा चक्र को प्रभावित कर उपयुक्त समय तक यौन-परिपक्वता को रोक देना बच्चों के लिए लाभप्रद होगा। इस अभ्यास को अधिक रोचक बनाने के लिए बच्चों को इसके साथ मानस दर्शन करने के लिए कहा जाता है। हम लगभग पचास वस्तुओं के नाम लेते हैं और बच्चा एक-एक कर उनका मानस दर्शन करता है। वह अपनी सजगता को घुमाता हुआ, स्वयं अपने आप से उन वस्तुओं के नाम कहता जाता और उन्हें देखता जाता है, जैसे गुलाब का फूल, बहती हुई नदी, हिमाच्छादित पर्वत, दौड़ती हुई गाड़ी, उड़ता हुआ हवाईजहाज, अमरूद का फल, चर्च की इमारत इत्यादि।

मानस दर्शन के लिए तीन प्रकार की वस्तुएँ ली जाती हैं—वे वस्तुएँ जिन्हें बच्चे ने पहले देखा है, वे जिन्हें उसने नहीं देखा है तथा अमूर्त्त धारणाएँ, जैसे, प्रेम, घृणा आदि। यह अभ्यास न केवल बच्चे को मनोकायिक संतुलन बनाये रखने में सहायता करता है, बल्कि उसमें मानस दर्शन करने की क्षमता का भी विकास करता है। बाद में जब वह स्कूल में भूगोल, इतिहास और गणित पढ़ेगा, तब उसमें मानस दर्शन करने के साथ-साथ विचार करने वाला मन भी तैयार रहेगा।

यद्यपि हमारे पास कोई ठोस वैज्ञानिक प्रमाण तो नहीं है, फिर भी मेरा विश्वास है कि योग के अन्य अभ्यास भी शीर्ष ग्रंथि को स्वस्थ रखने के साथ उसे अतिरिक्त आयु भी प्रदान करते हैं। इसीलिए भारत में हम सूर्य नमस्कार, नाड़ीशोधन प्राणायाम, मंत्र जप और मानस दर्शन सहित शाम्भवी मुद्रा का प्रशिक्षण देते आये हैं।

भारत माता

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती प्रणीत 'भक्ति योग सागर-3' से उद्धृत

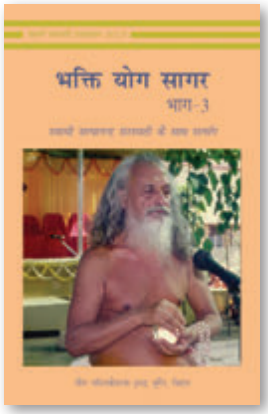

भारतीय समाज में जब पत्नी पति के घर आती है तो खाली हाथ नहीं आती, बल्कि पति ही एक भिखारी के रूप में उसके द्वार पर उसे लेने जाता है। पति के घर वह बर्तन, सूटकेस, साईकिल, रिक्शा, स्कूटर, कार, टी.वी., रेडियो, आभूषण के साथ-साथ कम-से-कम साठ हजार नकद भी लेकर आती है। वह धन की देवी, लक्ष्मी के समान आती है, पर पति उसे अपनी दासी के रूप में रखता है। भारतीय समाज की यह सबसे बड़ी विडम्बना है।

मैं तो बहुत सालों से स्त्रियों और लड़कियों का समर्थक रहा हूँ। मेरे आश्रम ने उन्नति की तो इसलिए कि मैंने स्त्रियों को प्रशिक्षित किया और उन्हें जिम्मेदार पदों पर रखा। स्त्रियाँ बड़ी निष्कपट होती हैं, उन्हें सिगरेट या शराब पीने की आदत नहीं होती, न वे जुआ खेलती हैं। स्त्रियाँ जहाँ भी जाएँगी वहाँ स्थिर होने का प्रयास करेंगी, चाहे वह ससुराल हो, ऑफिस हो या आश्रम हो। किसी संस्था को चलाने के लिए एक स्थिर व्यक्ति की आवश्यकता होती है, जिसका तन-मन सब वहाँ जमा रहे। यदि पुरुष घर चलाना चाहें तो वे विफल हो जायेंगे, क्योंकि वे अच्छे व्यवस्थापक नहीं हैं।

पुरुष और स्त्री का स्वभाव भिन्न होता है। विधाता ने पुरुष के माथे पर मुहर लगा दी है कि तुम पशु हो और स्त्री को कहा कि तुम देवी हो। स्त्री शक्ति है, ऊर्जा है, बल है, परन्तु उसका आसानी से शोषण होता है। स्त्रियाँ स्वभाव से कमजोर नहीं हैं, यह तो पुरुषों ने उनका शोषण करने के उद्देश्य से उन्हें अबला बना रखा है। यदि लड़की सबल हो तो कोई उसका शोषण नहीं कर सकता। एक मजबूत पत्नी कभी अपने पति को अभद्र व्यवहार नहीं करने देगी। एक स्त्री में ऐसा प्रभाव, ऐसी शक्ति और ऐसा अधिकार अवश्य होना चाहिए।

विकसित देशों की स्त्रियों ने अपने अधिकार के लिए संघर्ष किया, और उसे प्राप्त किया। पश्चिम में भी स्त्रियों पर भारतीय स्त्रियों जैसे सामाजिक प्रतिबन्ध थे, परन्तु उन्होंने अपने कानूनी, राजनैतिक, व्यावसायिक और सामाजिक अधिकार प्राप्त कर लिये हैं, उन्होंने वैवाहिक नियमों को बदलने का भी अधिकार प्राप्त कर लिया है। भारत में कानून पुरुषों द्वारा पुरुषों को ध्यान में रखकर बनाए जाते हैं। स्त्रियों के लिए कोई कानून नहीं बनाता, क्योंकि पुरुष स्त्रियों की समस्याओं को

नहीं समझते। स्त्रियों को अधिकार प्राप्त करने का अवसर आता है, किन्तु उन्हें न सामाजिक खुलापन प्राप्त है और न अनुभव ही है। लम्बे समय तक सामाजिक और राजनैतिक कारणों से स्त्रियों को पुरुषों से अलग रखा गया था, जिसके कारण वे अपना उत्थान करने में तथा उन सीमाओं से बाहर निकल पाने में असमर्थ रहीं जो समाज ने उन पर लादी थीं। प्रत्येक स्त्री को जानना चाहिए कि अपना अधिकार कैसे लिया जाता है। अधिकारों को प्राप्त करने के पूर्व व्यक्ति में पात्रता विकसित होनी चाहिए, और ये गुण आते हैं सामाजिक आदान-प्रदान से।

भारत में स्त्रियों का हमेशा से तिरस्कार किया गया और उन्हें निम्न दर्जा दिया गया है। शादी, सम्पत्ति तथा अन्य कानूनों में उन्हें द्वितीय श्रेणी में रखा गया है। एक विधवा समाज से बहिष्कृत हो जाती है, परन्तु विधुर के साथ ऐसा नहीं किया जाता। विधुर दुबारा शादी कर सकता है, परन्तु एक विधवा नहीं। यही समाज की विचारधारा है। सदियों तक इस सामाजिक पद्धति को न किसी ने चुनौती दी, न इसका विरोध किया। परन्तु आज यह एक बहुत बड़ा सामाजिक मुद्दा बन गया है। क्या स्त्री घर छोड़कर अपना स्वतंत्र भविष्य बना सकती है? क्या वह अपनी शिक्षा, अपने भाग्य का स्वयं फैसला कर सकती है? हाँ, कर सकती है।

स्त्री को माँ के रूप में देखना आध्यात्मिक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण है। लोग कहते हैं कि साधु-संन्यासियों का स्त्री से कोई सम्बन्ध नहीं होना चाहिए। उन्हें स्त्रियों से बात भी नहीं करनी चाहिए। लेकिन मैं कहता हूँ, 'क्या हो जाएगा? क्यों डरते हो?' जिस जाति ने स्त्री को ऊपर नहीं उठाया, स्त्री जाति के प्रति अपने विशेष दायित्वों का पालन नहीं किया, वह जाति कभी नहीं उठ सकती। हिन्दुस्तान का तब तक कल्याण नहीं होगा, जब तक कि वह अपनी औरतों को स्वतंत्र, महान् और विदुषी नहीं बनायेगा। वर्षों पहले मैंने यह जान लिया था कि संसार में जितनी लड़कियाँ और स्त्रियाँ हैं, वे मेरी माँ का प्रतीक हैं। चाहे पूर्वी देश की हो या पश्चिमी देश की, आधुनिक हो या परम्पराप्रिय, युवती हो या वृद्धा, संगिनी हो या सचिव, शहरी हो या देहाती, सभी स्त्रियों को सम्मान, प्रेम और सुरक्षा प्रदान करनी है और उन्हें वह सब देना है जो हमारा दायित्व है, क्योंकि हम उनकी संतान हैं। यह आध्यात्मिक बात है, लौकिक नहीं। चाहे स्त्री आपकी पत्नी हो या बेटी, उसका स्वभाव सदा मातृवत् ही रहता है। मेरे जीवन के निर्माण का श्रेय मेरी माँ को है, पिता को नहीं, क्योंकि वे तो केवल निमित्त बने थे।

स्त्री एक मूल्यवान् रत्न है, फिर भी समाज में इस मूल्यवान् वर्ग को अस्तित्वहीन कर दिया गया है। बहुत-सी लड़कियाँ स्कूल में नहीं पढ़ सकतीं या स्वतंत्रता से समाज में मिल-जुल नहीं सकतीं। एक ग्रामीण महिला के पास शिक्षा, आगे बढ़ने अथवा वैधानिक सुरक्षा का कोई साधन नहीं है और हमने उन्हें इन सब चीजों से वंचित किया है। इसलिए हमारा कर्तव्य बनता है कि हम उनकी सहायता करें तथा साथ दें।

यह आज की प्राथमिक आवश्यकता है। इसलिए हमने रिखिया में लड़कियों को शिक्षा के अवसर, नववधुओं को सौभाग्य-मंजूषाएँ, ग्रामीण महिलाओं को रोजगार के अवसर और विधवाओं को सहायता प्रदान करना शुरू किया ताकि वे अपने पैरों पर खड़ी हो सकें और आत्मनिर्भर बनें। हमें लड़कियों को आत्मविश्वासी और दृढ़ निश्चय वाला बनने के लिए शिक्षा, प्रोत्साहन और प्रेरणा देनी चाहिए। फिर अगली पीढ़ी अपने आप शिक्षित होगी। आने वाले समय में यह प्रशिक्षित और मूल्यों को बनाए रखने वाला समाज होगा।

स्त्रियों को पुरुषों के बराबर अधिकार मिलने चाहिए। लड़कियों को बचपन से ही मजबूत बनने देना चाहिए और उन्हें बन्धन में नहीं रखना चाहिए। उन्हें आत्मनिर्भर बनने के लिए अच्छी शिक्षा तथा प्रशिक्षण देना चाहिए। पूर्व में लड़कियों का केवल एक ही भविष्य हुआ करता था, शादी करना और बच्चे पैदा करना। अब उनके लिए बहुत-से क्षेत्रों में सम्भावनाएँ हैं। वे पढ़ सकती हैं, ज्ञान प्राप्त कर सकती हैं और डिग्री ले सकती हैं, डॉक्टर, वकील, एकांउटेन्ट या इन्जीनियर बन सकती हैं। कम्प्यूटर, इलेक्ट्रॉनिक्स, बायोटेक्नोलॉजी सीख सकती हैं। तब फिर यदि चाहें तो शादी कर सकती हैं। शादी ही एकमात्र भविष्य नहीं है लड़कियों के लिए। अब उनका भविष्य उच्च शिक्षा पर निर्भर है।

देवघर देवी का हृदय-स्थल है, यह नयी देवी का जन्म-स्थान भी है। स्त्री जागरण का सन्देश यहीं से सब ओर जाएगा। इसलिए अपने घर में स्त्रियों, बेटियों, माताओं और बहनों को सही शिक्षा दो और उन्हें चण्डी बनाओ। आने वाले युग में भारत की महिलाओं को भारत माता बनना चाहिए, और हमारा यह कर्त्तव्य है कि हम इस सपने को साकार होते देखें।

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

बम् लहरी

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

पृष्ठ 276, ISBN: 978-81-86336-75-5

इस पुस्तक में स्वामी सत्यानन्द सरस्वती की अंतश्चेत्य गंगा की लहरें हैं, जो उनके बाल्यकाल से ही प्रवाहित हो रही हैं। गुरु आश्रम में भी गुरु-वंदना, गुरु-ज्ञान-गंगा के गीत प्रवाहित होते रहे। उनके कविता-गीतों में गीता, उपनिषद्, वेद और पुराण समाहित हैं। श्री स्वामीजी इन रचनाओं को बम् लहरी कहते थे। संतों की भाषा अटपटी तो होती है, पर है प्रेरणा का स्रोत और कल्याण का पथ। उन्हें न तो छन्दों के, न ही व्याकरण के बन्धन ही जकड़ सकते हैं। उनका महत्त्व तो उनकी प्रेरणाओं में ही रहा करता है। ये 'संत हृदय के पावन परिमल' सभी के लिए हैं।

स्वर्ण जयन्ती प्रकाशन

पुस्तकों की मूल्य सूची एवं क्रयादेश प्रपत्र प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें–
योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201

दूरभाष : 91-6344-222430, 6344-228603, 09304799615 फैक्स : 91-6344-220169

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा।

सत्यानन्द योग वेबसाइट

SATYANANDA YOGA
BIHAR YOGA

www.biharyoga.net

यह बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट है जिसमें सत्यानन्द योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, शिवानन्द मठ, सीता कल्याणम् महोत्सव तथा योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट सम्बन्धी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

www.rikhiapeeth.in

यह वेबसाइट सभी साधकों के लिए स्वामी शिवानन्द जी की 'सेवा, प्रेम और दान' की मौलिक शिक्षाओं से जुड़े रहने का सुगम साधन है। यहाँ रिखियापीठ की गतिविधियों, कार्यक्रमों और सत्रों की जानकारी के अतिरिक्त प्रेरक सत्संग भी उपलब्ध हैं।

'यौगिक जीवन' स्वामी निरंजन के संग

www.biharyoga.net/living-yoga/ पर श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के उत्तराधिकारी स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती के मिशन सम्बन्धी लेख, संदेश एवं समाचार उपलब्ध हैं।

www.yogamag.net

योगा पत्रिका के लेखों के संग्रह तथा पूरे विश्व में सत्यानन्द योग केन्द्रों और शिक्षकों के सम्पर्क सूत्रों और गतिविधियों की जानकारी के लिए इस वेबसाइट को देखें।

आवाहन वेबसाइट

www.biharyoga.net/sannyasa-peeth/avahan/ पर संन्यास पीठ की द्वैमासिक पत्रिका, *सत्य का आवाहन* उपलब्ध है, जिसमें श्री स्वामी शिवानन्द, श्री स्वामी सत्यानन्द एवं स्वामी निरंजनानन्द की शिक्षाओं तथा संन्यास पीठ की गतिविधियों की जानकारी है।

- Registered with the Department of Post, India
  Under No. HR/FBD/298/13-15
  Office of posting: BPC Faridabad
  Date of posting: 1st-7th of every month
- Registered with the Registrar of Newspapers, India
  Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

bar code

गंगादर्शन के सत्र एवं कार्यक्रम 2014-2015

दिसम्बर 11-14	आश्रम जीवन, योग एवं सत्संग
दिसम्बर 25	स्वामी सत्यानन्द जन्मदिवस
जनवरी 1 2015	श्री हनुमान चालीसा
जनवरी 2-11	क्रिया योग सत्र (स्पैनिश एवं इटालियन)
जनवरी 21-24	श्री यंत्र आराधना
जनवरी 24	बसंत पंचमी महोत्सव, बिहार योग विद्यालय का स्थापना दिवस
फरवरी 1-मई 25	चातुर्मासिक योग अध्ययन सत्र (हिन्दी)
फरवरी 14	बाल योग दिवस
मार्च 1-30	योग अनुदेशक सत्र (हिन्दी)
मार्च 3-20	योग स्वास्थ्य रक्षा सत्र-दमा (हिन्दी)
जून 1-जुलाई 25	द्विमासिक योग विज्ञान एवं जीवनशैली परिचय सत्र (हिन्दी)
जुलाई 27-30	स्वामी निरंजन के सान्निध्य में गुरु पूर्णिमा सत्संग एवं आराधना
जुलाई 31	गुरु पादुका पूजन
अगस्त 2015-मई 2016	योग अध्ययन में डिप्लोमा (अँग्रेजी)
अगस्त 1-30	योग अनुदेशक सत्र (अँग्रेजी)
सितम्बर 8	स्वामी शिवानन्द जन्मोत्सव
सितम्बर 12	स्वामी सत्यानन्द संन्यास दिवस
अक्टूबर 1-जनवरी 25	चातुर्मासिक योग अध्ययन सत्र (अँग्रेजी)
अक्टूबर 3-20	योग स्वास्थ्य रक्षा सत्र-मधुमेह (हिन्दी)
दिसम्बर 25	स्वामी सत्यानन्द जन्मदिवस
प्रत्येक शनिवार	महामृत्युंजय हवन
प्रत्येक एकादशी	भगवद् गीता पाठ
प्रत्येक पूर्णिमा	सुन्दरकाण्ड पाठ
प्रत्येक 5 एवं 6 तारीख	श्री स्वामी सत्यानन्द जी की महासमाधि का स्मरणोत्सव
प्रत्येक 12 तारीख	अखण्ड रामचरितमानस पाठ

आश्रम में मोबाइल फोन लाना वर्जित है। अपना मोबाइल फोन कदापि अपने साथ न लाएँ।

उपर्युक्त सत्रों/ कार्यक्रमों के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए सम्पर्क करें-

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, मुंगेर, बिहार 811201

फोन : 06344-222430, 06344-228603, 9304799615 फैक्स : 06344-220169

वेबसाइट : www.biharyoga.net

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु अपना पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।